प्रतिक्रमणत्रय शब्दकोश

।। श्रीनेमिनाथाय नमः ।।

प्रतिक्रमणत्रय शब्दकोश

[भेदसंग्रह सहित]

आर्यिका १०५ श्री प्रशान्तमती माताजी
द्वारा संकलित एवं सम्पादित

प्रकाशक
आचार्यश्री शिवसागर दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला
शान्तिवीरनगर, श्रीमहावीरजी (राज०)

प्रतिक्रमणत्रय शब्दकोश

[भेदसग्रह सहित]

- सम्पादक : आर्यिका १०५ श्री प्रशान्तमती माताजी
- प्रकाशन-तिथि : दीक्षागुरु स्व. मुनि १०८ श्री दयासागरजी महाराज की ७ वीं पुण्यतिथि, कार्तिक कृष्णा ११
- संस्करण : प्रथम, १००० प्रतियाँ, अक्टूबर १९९२
- प्रस्तुति : डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी, जोधपुर
- अर्थसहयोग : श्रीमान् मिश्रीलाल जी बाकलीवाल, गौहाटी
- प्राप्तिस्थान : १. श्री शिवसागर दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला शान्तिवीरनगर, श्रीमहावीरजी (राज०)

  २. प्रियदर्शी क्षेमंकर पाटनी श्री पार्श्वनाथ जैन मन्दिर शास्त्रीनगर, जोधपुर-३४२ ००३
- मूल्य : आठ रुपये मात्र
- मुद्रक : हिन्दुस्तान आर्ट प्रिन्टर्स, जोधपुर, फोन २५२७७

पंचम पट्टाधीश परम पूज्य

श्री १०८ आचार्य श्री वर्धमान सागर जी महाराज के

✻ आशीर्वचन ✻

साहित्य-सेवा के प्रति जिसकी लगन होती है वह साहित्यिक जगत् का कुछ-न-कुछ कार्य अवश्य खोज लेता है और उसमें तन्मयता से संलग्न होकर स्वान्त:सुखाय भावना से उसे सम्पन्न करता है। अपने लाभ के लिए नि:स्वार्थ भाव से किये गये कार्य में पर का लाभ भी सहज ही बन जाता है। ऐसा ही यह **प्रतिक्रमणत्रय शब्दकोश** निर्माण का कार्य संघस्थ **आर्यिका प्रशान्तमतीजी** ने सम्पन्न किया है। इस कोश में मुनि-आर्यिकाओं के दैवसिक एवं पाक्षिक प्रतिक्रमण के साथ-साथ नैष्ठिकश्रावकों के द्वारा किये जाने वाले प्रतिक्रमण में समागत प्राय: सभी शब्दों का हिन्दी अर्थ लिखा गया है तथा तत्सम्बन्धी सम्भावित भेद एवं उनके लक्षणों को भी संकलित किया गया है। इस कोश की सुन्दर प्रस्तुति **डॉ. चेतनप्रकाश पाटनी** ने सम्पन्न की है।

प्रतिक्रमण पाठ में आये हुए शब्दों का अर्थबोध एवं भेद-लक्षण का ज्ञान प्राप्त करने में यह शब्दकोश सभी को सहायक बने, इसी शुभ भावना के साथ यही मंगल आशीर्वाद है कि आर्यिकाश्री सदैव माँ जिनवाणी की सेवा करती हुई स्वकीय पद के योग्य चारित्रपालन करके अपना हित सम्पादन करें तथा यथाशीघ्र ज्ञान-चारित्र की परिपूर्णता का पुरुषार्थ प्राप्त कर आत्मसिद्धि करें। पाटनीजी के प्रति भी यही शुभ भावना एवं आशीर्वाद है।

तारंगा सिद्धक्षेत्र ☐ ☐ २२-१०-९२

※ दो शब्द ※

जब तक जीव संसारी है अर्थात् जब तक मन, वचन और काय का व्यापार बुद्धिपूर्वक होता है, तब तक दोषों की उत्पत्ति सम्भव है। साधुवर्ग आगमानुसार आरम्भ और परिग्रह का त्यागी होता है किन्तु आठवें गुणस्थान के पूर्व वह बुद्धिपूर्वक प्रवृत्तिमार्ग का त्याग नहीं कर सकता और जब तक प्रवृत्ति है तब तक सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकता। उन दोषों की विशुद्धि के लिए ही साधु के षडावश्यकों में प्रतिक्रमण का समावेश है। **गृहीत व्रतों में लगे हुए दोषों के परिमार्जन को प्रतिक्रमण कहते हैं।** दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक आदि के भेद से प्रतिक्रमण सात प्रकार का है। साधु-साध्वी, क्षुल्लक-क्षुल्लिका और व्रती श्रावक-श्राविकाएँ नियम से प्रतिक्रमण करते हैं, किन्तु यदि प्रतिक्रमण की यह क्रिया मात्र पाठ रूप ही रहती है तो फलवती नहीं होती।

कुन्दकुन्दाचार्य भी कहते हैं कि **पाठो न करेदि गुणं** बिना श्रद्धा या बिना भाव के मात्र पाठ गुणकारी नहीं होता है। बिना अर्थ समझे श्रद्धा तो बन सकती है, किन्तु भावात्मक ज्ञान नहीं हो पाता।

जो साधु प्राकृत भाषा का अर्थबोध सहज में नहीं कर पाते, वे एक-एक शब्द के अर्थ को उपयोग में लाकर भी प्रतिक्रमण के पूर्ण भाव को हृदयगम कर सकते हैं। इसी उद्देश्य को लेकर आर्यिका प्रशान्तमतीजी ने दैवसिक, पाक्षिक और श्रावक-प्रतिक्रमण का शब्दकोश तैयार किया है। आशा है, यह **प्रतिक्रमणत्रय शब्दकोश** अर्थबोध में सहायक सिद्ध होगा।

आर्यिका प्रशान्तमतीजी इसी प्रकार माँ सरस्वती की सेवा में संलग्न रहते हुए अपने संयम की प्रतिपालना करें, यही मेरी मंगल भावना है।

डॉ० चेतनप्रकाश जी पाटनी संयम एवं समीचीन ज्ञान भण्डार के धनी हैं। आपका पूर्ण जीवन सरस्वती की सेवा के लिए ही समर्पित है। उन्होंने ही 'कोश' को प्रस्तुत रूप प्रदान किया है। श्रीमान् उदारचेता दानशील **श्री मिश्रीलालजी बाकलीवाल** शास्त्र-प्रकाशन में अपनी चचला लक्ष्मी का निरन्तर सदुपयोग कर रहे हैं। ये दोनों महानुभाव अति शीघ्र केवल-लक्ष्मी के स्वामी बनें, ऐसी मेरी मंगल भावना है।

शरद् पूर्णिमा, सं. २०४९ — **आ० विशुद्धमती**

सम्पादकीय

साधुओं के षड़ावश्यकों में प्रतिक्रमण का विशिष्ट महत्त्व है। भूतकालीन दोषों का निराकरण करना उसे **प्रतिक्रमण** कहते हैं। भगवान अजितनाथ से लेकर भगवान पार्श्वनाथ तक २२ तीर्थकरो के समय में साधुवर्ग दोष लगने पर प्रतिक्रमण करते थे। भगवान आदिनाथ और भगवान महावीर के तीर्थकाल में क्रमशः अति सरल एवं अति वक्रपरिणामी जीव होने से जिनेन्द्रदेव ने दोषों के परिमार्जन के लिए साधुओं को प्रतिदिन प्रतिक्रमण करने का आदेश दिया है।

जैसे सफेद वस्त्र पर कोई दाग लग जाता है तो उसको तुरन्त धोने से वह साफ हो जाता है। यदि दाग थोडे समय तक रह गया तो धोने पर भी वह पूरा साफ नही होता, उसी प्रकार ज्ञात-अज्ञात भावों से दिन में लगे हुए दोषों के प्रक्षालन के लिए रात्रि व्यतीत नही होनी चाहिए और रात्रि मे लगे हुए दोषों के प्रक्षालन के लिए दिन व्यतीत नही होना चाहिए। तुरन्त शुद्धि करने से आत्मा कर्मभार से हल्की हो जाती है।

दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक, ईर्यापथिक और उत्तमार्थिक—इस प्रकार प्रनिक्रमण के ७ भेद है। इन सभी के द्रव्य और भाव प्रतिक्रमण ऐसे दो-दो भेद होते हैं। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से किये हुए अपराधों की शुद्धि के लिए निन्दा-गर्हा से युक्त मन-वचन-काय से किया हुआ **भाव-प्रतिक्रमण** है। वचन और काय से आवर्त्त आदि कृतिकर्म पूर्वक किया हुआ **द्रव्य प्रतिक्रमण** है।

"यस्मात्क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।" भावशून्य क्रिया फलदायक नहीं होती है। मात्र शाब्दिक प्रतिक्रमण (द्रव्य प्रतिक्रमण) से कर्मों की निर्जरा नहीं होती है। वही द्रव्य प्रतिक्रमण यदि भाव सहित किया जाता है तो उससे नवीनक र्मों का आस्रव रुक जाता है और पूर्वोपार्जित कर्मों का प्रक्षालन हो जाता है। इसलिए प्रतिक्रमण का अर्थबोध होना अति आवश्यक है। आत्मविशुद्धि के चरमोत्कर्ष के लिए प्रतिक्रमण उत्कृष्टतम साधन है।

प्रबुद्ध साधुवर्ग तो अर्थ-बोध सहित प्रतिक्रमण करके **अंतो अंतो इज्झमि** से दोषों से शीघ्र निवृत्त हो जाते है, किन्तु मुझ जैसे बाल-अज्ञानी साधु शब्दार्थ नहीं जानने से मात्र द्रव्य प्रतिक्रमण ही कर पाते हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए मैंने दैवसिक, पाक्षिक एवं श्रावक प्रतिक्रमण के कठिन शब्दों को संकलित कर अकारादि क्रम से लिखा है और बाद में भेद-संग्रह लिखा है।

परम पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री १०५ सुपार्श्वमती माताजी विरचित प्रतिक्रमण पंजिका (सटीक) तथा परम पूज्य विदुषीरत्न आर्यिका श्री १०५ विशुद्धमती माताजी द्वारा अनूदित पाक्षिक प्रतिक्रमण के आधार से मैंने यह प्रथम पुरुषार्थ किया है।

भेद-संग्रह में १७ प्रकार के निषिद्धिका स्थानों और २० असमाधि स्थानों का विवरण मूलाचार आदि ग्रन्थों में मुझे प्राप्त नहीं हो पाया। यह वर्णन प्रतिक्रमण पंजिका के आधार पर ही लिखा है। २० असमाधि स्थानों में से १९ ही लिखे गये है, २० वाँ असमाधि स्थान कौन सा है, यह ज्ञात नहीं हो सका। शब्दार्थ में भूल होना सम्भव है, गुरुजन सुधार कर ही इस कोश का सदुपयोग करेंगे, ऐसी आशा है।

सर्व गुरुजनों के पावन आशीर्वाद से सरस्वती मातेश्वरी की सेवा और निर्दोष संयम-पालन की मेरी शक्ति निरन्तर वृद्धिगत होती रहे, यही हार्दिक भावना है।

गुरुवार, कार्तिक कृष्णा ११, **—आर्यिका प्रशान्तमती**
२२-१०-९२

।। श्रीनेमिनाथाय नम. ।।

श्रीशान्ति-वीर-शिव-धर्माजित-वर्धमान-सूरिभ्यो नमो नमः ।

प्रतिक्रमणत्रय शब्दकोश

※ शब्दसंग्रह ※

अ

अइक्कमणदाए—अवहेलना में ।

अइगमणे—शीघ्र चलने में ।

अइगिद्धीए—अतिलालसापूर्वक ।

अइचारं—अतिचार ।

व्रत के एकदेश भंग होने का नाम अतिचार है। अथवा व्रतों में शिथिलता का नाम अतिचार है। अथवा एक बार विषयों में प्रवृत्ति का होना अतिचार है।

अइचारं पडिक्कमामि--अतिचारों का त्याग करता हूँ ।

अइभारारोहणेण वा--अधिक बोझ लादने से ।

अइमत्तभोयणाए—अतिमात्रा में भोजन करने से ।

अइ-माणिणी—अतिमानिनी ।

अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा करने वाली भाषा ।

अकरणिज्जं—अव्रत आदि अकृत्यों (नहीं करने योग्य) का ।

अकहाए--तप और स्वाध्याय से हीन असम्बद्ध प्रलाप करने में।
अकिरियं—अकरणीय (व्रत-विराधना आदि) अनुष्ठानों का।
अक्ख - समुद्र में होने वाला द्वीन्द्रिय जीव।
अखिदिसयणं—शय्या आदि पर शयन करने का।
अखंति--असहनशील स्वभाव का।
अगुत्तेण- मन, वचन, काय का संवरण न कर।
अगुत्तिदिएण- अपनी इन्द्रियों को वश में न रखकर।
अगुरुलहु अगुरुलघु।
जिस गुण के निमित्त से द्रव्य का द्रव्यपना सदा बना रहे अर्थात् द्रव्य का कोई गुण न तो अन्य गुण रूप हो सके और न कोई द्रव्य अन्य द्रव्य रूप हो सके और जिसके निमित्त से प्रत्येक द्रव्य में तथा उसके गुणों में समय-समय प्रति षट्गुण हानि-वृद्धि होती रहे, उसे अगुरुलघु गुण कहते हैं।

अग्गीव--अग्नि की तरह।
अचक्खुविसए—जो नेत्रों से देखने में न आवे।
अच्चासादणाए -व्रतों की अति-आसादना या अवहेलना।
अच्चेमि अर्चना करता हूँ, पूजा करता हूँ।
अच्छाकारिद श्रुत का जल्दी-जल्दी उच्चारण किया हो।
अज्जवं- आर्जवगुण।
अट्टज्झाणे - आर्त्तध्यान में।
अट्ठविह-कम्मविप्प-मुक्काणं- आठों प्रकार के कर्मों से रहित।
अट्ठावय-पव्वए- अष्टापद (कैलास) पर्वत पर।
अट्ठिदि-भोयणं -बैठकर भोजन करने का।
अट्ठि-मज्जाणुरायरत्तो अस्थि-मज्जानुरागरत।
जिस तरह मज्जा अर्थात् हड्डियों के मध्य में रहने वाला रस हड्डी से समक्त होकर ही शरीर में रहता है, उसी तरह जो जिन-शासन में अनुरक्त है।

अडयंबर-सत्थधरा— अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम वस्त्र।

अणयंकरा— विरोधिनी ।

परस्पर प्रीति से रहने वालों के बीच द्वेष कराने वाली भाषा ।

अणसणं—अनशन नाम का बाह्य तप ।

चार प्रकार के (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय) आहार का त्याग करना ।

अणसिट्ठे—मालिक द्वारा निषेध किया हुआ आहार ।

अणहि-गमणेण—अप्रतिग्रहण ।

अणाचारो—अनाचार ।

विषय - वासनाओं में अत्यन्त आसक्ति का होना । अथवा व्रतों को भंग करना अनाचार है ।

अणाभोगो—अनाभोग ।

लज्जादि के भय से अप्रकट अनुष्ठान करना अनाभोग है।

अणायदण-सेवणाए—अनायतनों की सेवा ।

अणिण्हवणे—श्रुतज्ञानाचार का पाँचवाँ भेद अनिह्नव ।

शास्त्र एवं गुरु का नाम न छिपाना अनिह्नवाचार है।

अणियोगद्दारेसु—अनुयोगद्वारों में ।

कृति, वेदना, स्पर्शन, कर्म, प्रकृति, बन्धन, प्रक्रम, अनुपक्रम, अभ्युदय, मोक्ष, संक्रम, द्रव्यलेश्या, भाव-लेश्या, सात, असात, दीर्घ, ह्रस्व, भवधारणीय, पुरुपुद्गलात्म, निधत्तमनिधत्त, सनिकाचितमनिका-चित, कर्मस्थितिक, पश्चिम-स्कन्ध और अल्पबहुत्व ये २४ अनुयोगद्वार है ।

अणियोगेसु—अनुयोगों में ।

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग ये चार अनुयोग हैं ।

अणुत्तरस्स—सर्वोत्कृष्ट होने से अनुत्तर हैं ।

अणुपाल-इत्ता—अनुपालन कर ।

अणुपुव्वं—क्रमवार, आनुक्रमिक ।

अणुभागं—कर्मों की फलदान शक्ति ।

अणुमणणं पुट्ठापुट्ठेण—पूछे जाने पर अथवा बिना पूछे हो मैंने जो अनुमति दे दी हो।

अणुमणमुद्दिट्ठ—अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग।

अणुवीचि भास- निर्दोष वचन। अथवा आगमानुकूल वचन।

अणुव्वदे थूलयडे—अणुव्रत में स्थूल।

अणेण केण वि—और किसी भी।

अणेसणाए—अनेषणापूर्वक अथवा उद्गम आदि दोषों से दूषित आहार ग्रहण करने में (एषणापूर्वक आहार ग्रहण नही करना अनेषणा है)।

अणंगकीडणेण- कामसेवन के अंगों को छोड़कर दूसरे अंगों से कुचेष्टाएँ की हों।

अण्णत्थ सइपएसे- किसी अन्य शुद्ध स्थान पर (पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके)।

अण्ण-दिट्ठी-पसंसणदाए—अन्यदृष्टि प्रशंसा की हो।

अण्ण-पाण-णिरोहेण वा—अन्न-पान के निरोध से किया हो।

अण्णहादिण्हं—अन्यथा पढा या पढ़ाया हो।

अण्णहापडिच्छिदं—अन्यथा ग्रहण (सुना) किया हो।

अण्णेण-अन्य किसी प्रकार से।

अतिहिस्स संविभागो—अतिथिसंविभाग।

अत्थ—श्रुतज्ञानाचार का सातवाँ भेद अर्थाचार।
अर्थ के अनुकूल पठन-पाठन करना अर्थाचार है।

अत्थ-कहाए धनोपार्जन की कथा मे।

अत्थक्खाणेसु-आख्यानों में।
महापुरुषो के चरित्र और पुराण आख्यान है।

अदिक्कमो-अतिक्रम।
किसी सांसारिक आर्त्त-रौद्र ध्यान से अथवा चित्त में सक्लेश परिणाम हो जाने से आगमोक्त काल का उल्लंघन

कर विशेष काल तक करते रहना अतिक्रम है। इसमे मानसिक शुद्धि की हानि होती है।

अदिण्णादाणादो वेरमणं—वस्तु के स्वामी द्वारा बिना दी हुई वस्तु के ग्रहण से विरक्त होना।

अदिण्णं-गिण्हियं—बिना दी हुई वस्तु स्वयं ग्रहण की हो।

अदीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं—अतीत, अनागत और वर्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनों कालों में होने वाले सिद्धों की।

अदेहणं—कर्मवश जो मैने देह का उपार्जन किया है, वह ही मेरे धन है, अन्य परिग्रह नही है (ऐसी भावना)। अथवा देह में अशुचित्व, अनित्यत्व की भावना।

अधुना—इस समय (अब)।

अपच्चक्खियं पच्चक्खामि—अत्यक्त दुश्चरित्र का प्रत्याख्यान द्वार से निराकरण करता हूँ।

अपरिसुद्धं—अयोग्य।

अपाउग्गसेवणदाए—त्याग करने योग्य का सेवन करना। अथवा अन्य के योग्य का सेवन करना।

अपाणिपत्तं—थाली आदि पात्र में भोजन करने का।

अप्पडिलेहिऊण-गेण्हतेण—पिच्छी द्वारा प्रतिलेखन (मार्जन) न करके ग्रहण करते हुए।

अप्पडिवेक्खिया पमज्जियोस्सग्गेण वा—जीवों को दृष्टि से न देखकर और प्रमाद से उनका शोधन किये बिना ही मल-मूत्र का क्षेपण किया हो।

अप्पपसंसणदाए—अपनी प्रशंसा अपने मुख से करना।

अप्पमेय—इन्द्रियज्ञान से नहीं जानने योग्य।

अप्पसत्थ—अप्रशस्त।

अप्पाणं—आत्मा को।

अप्पासुग-ठाणेसु—अप्रासुक स्थानों में।

अबहु-सुददाए—अल्पश्रुतता।

अबोहिदाए—अबोध।

अब्भुट्ठिदकरणदाए—उसी काल में उद्यत, तैयार।

अब्भुट्ठिद-दुक्कड-णिराकरणदाए—दुष्कृत को दूर करने के लिए उद्यत।

अब्भोवयासे—वृक्षादिक से प्रच्छादित या अप्रच्छादित अप्रासुक खुले मैदान में।

अब्भोवास—अभ्रावकाश योग (शीतयोग)।
शीतकाल में चौराहे पर नदी किनारे ध्यान लगाना शीतयोग है।

अब्भंतरादो—भीतर।

अभित्थुआ—स्तुति किये गये।

अभिमद—अभिमत अथवा अभिप्रेत।

अभिमंसिदाए—अविचार।

अमिलो—खट्टा।

अमुत्तिं—अमुक्ति का। (मोक्ष के बाधक परिणामों का त्याग करता हूँ।)

अमूढदिट्ठि—अमूढ़दृष्टि दर्शनाचार।
कुमार्ग व कुमार्गगामियो में मन से सम्मत नही होना, काय से सराहना नही करना, वचन से प्रशंसा नही करना अमूढ़-दृष्टि दर्शनाचार है।

अय-दंड-पासविक्खिय—लोहे के शस्त्र तलवार, कुदाली आदि तथा दण्डे और जाल आदि के बेचने का त्याग।

अरहंताणं—अरहन्तों को।

चार घातिया कर्मों से रहित, अनन्त चतुष्टय सहित, आठ प्रातिहार्यों से युक्त, परम औदारिक शरीर के धारक, हितोपदेशी, सर्वज्ञ, वीतराग अरहन्तों को।

अरुह-कम्मं—अरहन्तों का कर्मानुष्ठान।

अलसदाए—आलस्य।

अलियं ण—झूठ (वचन) नहीं बोलना।

अवगहणं—अवगाहनत्व।

एक जीव के अवगाह क्षेत्र मे अनन्ते जीव समा जायें, ऐसा अवकाश देने का सामर्थ्य अवगाहन गुण है।

अवत्थंडिले—संस्कारित या असंस्कारित अप्रासुक उच्च भूमि में एवं नीची भूमि में।

अवरम्मि परिग्गहे—अन्य परिग्रह में।

अवि-दंतंतर-सोहण-णिमित्तं—दन्तान्तर शोधन मात्र भी।

अविदिद-परमट्ठदाए—परमार्थ के ज्ञान का अभाव।

अवि-बालग्ग-कोडि-मित्तं—भेड़ के बच्चे के बाल की अग्रकोटि बराबर।

अवीरिएण—अवीर्य (शक्ति का अभाव)।

असणं—असन (दाल, भात, रोटी आदि)।

असमक्खियाहिकरणेण वा—बिना प्रयोजन मन, वचन, काय की अधिक प्रवृत्ति की हो।

असमण-पाउग्गं—श्रमण के अयोग्य।

असीहियपदे—असहिय (अस्सही-लौटना, वापिस आना) पद।

अस्समणेण—(धर्म में) अश्रद्धान।

अहाकम्मेण—अधःकर्मकृत।

स्वय छह काय के जीवों की विराधना करके बनाया गया आहार।

अहिय-पया-संता—अधिक प्रभा सम्पन्न।

अहिवंदिऊण—नमस्कार करके ।

अहोरदियं—दिवस-रात्रि सम्बन्धी ।

अंकुरा—अंकुर ।

अंडाइया—अण्डों से उत्पन्न होने वाले कबूतर आदि पक्षी ।

अंतउरं—अंतःपुर (रानियों का निवासगृह) ।

अंतयडाणं—ससार का अंत करने वालों का ।
प्रत्येक तीर्थंकर के काल में घोरोपसर्ग सहन कर अन्तर्मुहूर्त मे सर्व कर्म क्षय करने वाले दस-दस अन्तःकृत केवलियो का।

अंतो-अंतो—अन्दर ही अन्दर ।

आ

आइच्चेहिं—सूर्य से ।

आइरियाणं—पंचाचार का स्वयं पालन करने वाले, औरों को पालन कराने वाले तथा छत्तीस गुणों से समन्वित आचार्यों को ।

आउंचणे—हाथ और पैरों को सकुचित करने में ।

आउस्संतो—हे आयुष्मान् भव्यो !

आगदिगदि-चवणोववाद—अन्य स्थान से यहाँ आना आगति, यहाँ से अन्यत्र जाना गति । मरण करना (च्यवन) और जन्म लेना (उपपाद) ।

आगमेसिं—आगामी ।

आणयणेण वा—मर्यादा किये हुए क्षेत्र के बाहर से वस्तु मंगाई हो ।

आदाण-णिक्खेवण-समिदी आदान-निक्षेपण समिति ।
सूक्ष्म जीवों की हिंसा से बचने के लिए शास्त्रादि उपकरणों को पिच्छिका से मार्जन कर सावधानी पूर्वक रखना-उठाना **आदान-निक्षेपण समिति** है ।

आदावरण—आतापन योग ।

ग्रीष्म ऋतु में पर्वत के शिखर पर सूर्य के सम्मुख खडे होना **आतापन योग** है ।

आदिकम्मं—कर्मभूमि के प्रारम्भ में सर्व प्रथम प्रवृत्त होने वाले असि, मसि और कृष्यादि कर्म ।

आदियराणं—आदि तीर्थप्रवर्तकों का ।

आभोगो—कापोत लेश्या के वश से, पूजा-महत्त्व की अभिलाषा से अति प्रगाढ़ अनुष्ठान करना **आभोग** है ।

आमासे—नियत शरीर के प्रदेशों को छूने में ।

आमोदरियं—अवमौदर्य तप ।

पुरुष का स्वाभाविक आहार ३२ ग्रास है, उसमे से एक ग्रास आदि कम करके लेना **अवमौदर्य तप** है ।

आमेलिद—शास्त्र के किसी अन्य अवयव को किसी अन्य अवयव के साथ मिलाकर पढ़ा हो ।

आराहणं अब्भुट्ठेमि—रत्नत्रय की आराधना (अर्थात् रत्नत्रय में निर्दोष प्रवृत्ति) का अनुष्ठान करता हूँ ।

आराहियं—अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति रूप मोक्ष का आराधक (साधु होवे) ।

आरोग्ग-णाण--निर्मल ज्ञान (केवलज्ञान) ।

आलएण—निरवद्याश्रय से ।

आलोचेउं—आलोचना ।

गुरु के समक्ष दस दोषों को टालकर अपने प्रमाद का निवेदन करना **व्यवहार आलोचना** है । अपने द्वारा किये गये अपराधो या दोषो को दबाने का (छिपाने का) प्रयत्न न करके उसका त्याग करना **निश्चय आलोचना** है ।

आवस्सयाणादरेण वा—षट् आवश्यक पालन करने में अनादर किया हो ।

आवासएसु परिहीणदाए—षडावश्यकों के अनुष्ठान में काल-हानि की हो ।

आसमे--आश्रम में।
आहारियं--मैने स्वयं ग्रहण किया हो।

इ

इच्चेदाणि--इस प्रकार (भावनाओं सहित)।
इड्ढि--सौधर्मादि इन्द्र एवं चक्रवर्ती आदि की ऋद्धियाँ।
इत्तरिया-गमणेण--व्यभिचारिणी स्त्री के साथ आने-जाने का व्यवहार रखा हो।
इत्थिकहायत्तणेण वा--स्त्रियो की कामोत्पादक कथा कही हो।
इत्थि-मणोहरांग-णिरक्खणेण वा--कामदृष्टि से स्त्रियों के मनोहर अंगों का निरीक्षण किया हो।
इत्थि-विप्परियासियाए--स्त्री-विपर्यास।
सेवन नहीं करने पर स्त्री का सेवन किया हो--ऐसा विचार होना स्त्री-विपर्यास है।
इदो उत्तरं--इस उत्कृष्ट लिंग से श्रेष्ठ।
इमाणि पचाणुव्वदाणि--इन पाँच अणुव्रतों में।
इरियासमिदी--चार हस्त प्रमाण भूमि को देखकर जीवों की रक्षा करते हुए गमनागमन करना ईर्यासमिति है।
इसिपब्भार-तल-गयाणं--ईषत् प्राग्भार पृथ्वी के तल को प्राप्त।
सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक के ध्वजदण्ड से १२ योजनमात्र ऊपर जाकर आठवी पृथिवी ईषत्प्राग्भार स्थित है। सिद्धभूमि 'ईषत्-प्राग्भार' पृथिवी के ऊपर स्थित है।
इहलोय-सण्णाए--इस लोक सम्बन्धी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञाओं में।

उ

उग्गहं—(परिग्रह में) अवग्रह अर्थात् निवृत्ति की भावना।

उच्चार - पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावण - समिदी—

प्रतिष्ठापन समिति।

निर्जन्तु अर्थात जीवरहित स्थान को देखकर टट्टी, पेशाब, खखार, नाक का मल, गोबर आदि मल को क्षपण करना **प्रतिष्ठापन समिति** है।

उच्चावयाए—स्त्री के राग से वीर्य का स्खलन हो गया हो।

उड्ढ-मह—ऊर्ध्वलोक, अधोलोक।

उड्ढमुहं चरंतेण—ऊँचा मुँह करके चलने में।

उड्ढवइक्कमणेण—ऊर्ध्व दिशा का अतिक्रमण किया हो।

उत्तिंग—पूँछ के अग्रभाग को जमीन से स्पर्श करके चलने वाले लट, इल्ली, उदई आदि जीव।

उद्दावणं—उत्तापन, मार डालना।

उद्दिट्ठयडेण—उद्दिष्टकृत।

स्वयं मुनि को, देवता को और पाखंडियो को उद्देश्य करके बनाया हुआ भोजन ग्रहण करना।

उद्देहिय—दीमक।

उप्पण्णाणुप्पण्णा—उत्पन्न और अनुत्पन्न।

उप्पहे—उन्मार्ग में।

उब्भेदिमा—भूमि, काष्ठ और पत्थर को भेदकर उत्पन्न होने वाले।

उम्मग्गं—उन्मार्ग का।

उवगूहण—उपगूहन अंग।

जो अपने आप ही पवित्र ऐसे जैनधर्म की अज्ञानी तथा असमर्थ जनो के आश्रय से उत्पन्न हुई निन्दा को दूर करते है, उसको उपगूहन दर्शनाचार कहते है।

उवघादो—उपघात। आघात पहुँचाना।

उवज्झायाणं—उपाध्यायों को ।

बारह अङ्गों एवं चौदह पूर्वों का अध्ययन व अध्यापन करने वाले एवं स्वयं शुद्ध व्रतों को धारण करने वाले उपाध्याय होते हैं ।

उवदेसिदाणि—उपदेश दिया है ।

उवट्ठावण-मंडले-महत्थे—इस महाव्रत से, मोक्ष है लक्षण जिसका ऐसा महान् अर्थ (प्रयोजन) प्राप्त होता है ।

उवयरण—उपकरण । ज्ञानोपकरण (पुस्तकादि), संयमोपकरण (पिच्छिकादि) ।

उवरदोमि—विषयों से उपरत (विरक्त) होता हूँ ।

उवलद्ध—विज्ञात ।

उववज्जंति—उत्पन्न होते हैं ।

उववादिमा—उपपाद जन्मवाले देव-नारकी ।

उवसग्गेसु—उपसर्गों में ।

उवसम-पहाणस्स—क्रोधादिक के उपशम का प्रधान कारण है ।

उवसेज्ज—उपशय्या । पट्टशाला, देवकुलादि ।

उवसंपज्जामि—स्वीकार करता हूँ ।

उवहाणे—उपधान में ।

श्रुतज्ञानाचार का तीसरा भेद । अवग्रहपूर्वक स्वाध्याय करना उपधानाचार है ।

उवहि-णियडि—उपधि (परिग्रह) वचना ।

उवासयाज्झयणे—उपासकाध्ययन में ।

उव्वट्टणे—सोकर के जागने में ।

उव्वत्तणे—ऊपरी परिवर्तन में ।

उस्सुगत्तं—विषय-वासना की उत्सुकता ।

ए

एगभत्तं पच्चुप्पणं फासुगं अब्भुट्ठेमि—दिन में एक बार यथा-काल योग्य प्रासुक भोजन का अनुष्ठान करता हूँ।

एदाइं वदाइं—इन व्रतों को।

एदेसिं—इन जीवों को।

एवमाइयासु—इसी प्रकार।

एस गोयम—हे गौतम !

एसणा समिदी—एषणासमिति।

छियालीस दोष एवं बत्तीस अन्तराय टालकर सदाचारी श्रावक के घर विधिपूर्वक निर्दोष आहार ग्रहण करना एषणा समिति है।

क

कक्कराइदे—दाँतों को कट-कट करने में अर्थात् अति कठोर शब्द बोलने में।

कक्कसा—कर्कश-सन्तापजनक भाषा। यथा-तू मूर्ख है, कुछ नही जानता।

कट्ठ कम्मेसु—काष्ठ कर्म में।

दो पैर, चार पैर, बिना पैर और बहुत पैर वाले प्राणियों की काष्ठ में जो प्रतिमाएँ बनाई जाती है उन्हे **काष्ठकर्म** कहते है।

कडयंगद-बद्धमउडकय-सोहा—कड़ा, अंगद (बाजूबंद) और मुकुट से शोभित।

कडुआ—कड़वी (उद्वेगकारी भाषा)।

कदकम्मेसु—कृत कर्मों में।

कदावराह-सोहणयं—किये हुए अपराधों की शोधना करने के लिए।

कपाट-पाटन-भटाः—कपाटों को खोलने में चतुर।

कम्म-गुरु-गदाए—कर्मो की शक्ति का बाहुल्य।

कम्म-चक्क-मुक्काणं—ज्ञानावरणादि कर्म-समूह से रहित।

कम्म-णिज्जरफलस्स—कर्मों की निर्जरा होना ही इसका फल है।

कम्म-दुच्चरिदाए—कर्मो की दुश्चरित्रता।

कम्म-पुरुक्कडदाए—कर्मो की अत्यन्त तीव्रता।

कम्म-भारिगदाए—कर्मो का बोझ अर्थात् कर्मप्रदेशों की बहुलता।

कयं—पूर्वकृत।

कलं—बहत्तर कला अथवा गणित आदि विद्या।

कव्वडे—चारों ओर पर्वत मे घिरा हुआ।

कसायवसंगएण—क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह आदि कषायों के वश।

काइयाहिकरणियाए—कायाधिकरण क्रिया में।

काउस्सग्गपदे—नव सख्या प्रमाण पच नमस्कार मंत्र का उच्चारण तथा १८,२७,३६,१०८ इत्यादि संख्या प्रमाण पच नमस्कार मंत्र का उच्चारण।

काउस्सग्गो कायोत्सर्ग।

दैवसिक आदि नियमों मे-दिवससम्बन्धी, रात्रिसम्बन्धी एवं पाक्षिक व चातुर्मासिक आदि नियमित अनुष्ठानों मे आगमोक्त काल प्रमाण के अनुसार अपने-अपने नियत समय मे जो जिनगुण-स्मरणपूर्वक शरीर से ममत्व का त्याग किया जाता है, उसे कायोत्सर्ग कहते है।

कामकोवण-रसासेवणेण वा—कामोत्पादक पुष्ट रसो का सेवन किया हो।

कामतिव्वाभिणिवेसेण वा—काम के तीव्र वेग से बीभत्स विचार बने हों।

काय-गुत्तीओ—काय गुप्ति ।

छेदन, भेदन, ताड़न, मारण आदि कार्यों से तथा चित्रादि में बनी स्त्रियों के स्पर्श आदि से विरत रहना कायगुप्ति है ।

काय-विप्परियासियाए—काय-विपर्यास ।

स्त्री के नहीं होने पर भी मैं स्त्री की गोदी मे सोया हूँ, ऐसा सकल्प होना काय-विपर्यास है ।

काय-सुहाहिलास-परिणामे—शारीरिक सुख की अभिलापा के परिणाम में ।

काले—काल में ।

श्रुतज्ञानाचार के आठ भेदो में प्रथम काल नाम का भेद है । तीनों संध्याओं में, ग्रहण काल में और उल्कापात आदि अकालो मे स्वाध्याय नहीं करना तथा आगमविहित काल में स्वाध्याय करना कालाचार है ।

काले वा परिहाविदो—आगमविहित काल में स्वाध्याय न किया हो ।

कित्तिय-वंदिय-महिया- वचन से कीर्तन किये गये, मन से वन्दना किये गये तथा काय से पूजे गये ।

किरियम्मं—कृतिकर्म ।

जिनदेव, सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय (नव देवता) की वन्दना करते समय जो क्रिया की जाती है उसे कृतिकर्म कहते है । इस कृतिकर्म मे आत्माधीन होकर तीन प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार शिरोनति और बारह आवर्त स्वरूप अनुष्ठान किया जाता है ।

कीडयडेण—क्रीतकृत ।

आहार हेतु मुनि के घर आ जाने के बाद गाय और भैंस आदि को बेचकर, घर, जमीन, सोना, चांदी आदि बेचकर और मन्त्र, तन्त्र आदि के द्वारा खरीदा हुआ आहार क्रीतकृत दोषयुक्त होता है ।

कुइदे—कुत्सित में (स्वप्न में बड़बड़ करने में)।
कुकुवेएण वा—शरीर की खोटी चेष्टाएँ की हों।
कुक्कुच्चियाए—कौत्कुच्य - शरीर से दुष्ट चेष्टा करने वाली स्त्रियों की कथा करना।
कुक्कुडासण—कुक्कुट आसन।
कुक्खि-किमि—कुक्षि और क्षुद्र जीव अथवा कीट विशेष।
कुचरियं—मिथ्या चारित्र का।
कुठारं—कुठार।
कुतवं—पञ्चाग्नि आदि कुतपों का।
कुदंसणं—मिथ्यादर्शन का।
कुप्प-भांड—वस्त्र एवं बर्तन।
कुलयराणं—कुलकर (सिद्धसेन आदि कुलों के भेद करनेवाले)।
कुंथु—एक क्षुद्र जन्तु अथवा त्रीन्द्रिय जीव की एक जाति।
कूड-तुला-माण—झूठी तराजू और नापने-तौलने आदि के बाट कम नही रखना।
कूडलेहण-करणेण—झूठा लेख लिखने से।
कूर-सत्ताणं बिल्ली, कुत्ता आदि क्रूर प्राणियों का।
केवलीपण्णत्तो—केवली भगवान द्वारा प्रणीत (कहा हुआ)।
कोवीण—कौपीन।
कोसं—कोश (भाण्डागार)।
कंखाए—शुभाचरण पालन कर संसार-सुख की वाञ्छा की हो।
कंदप्पियाए—राग के उद्रेक में हंसी युक्त अशिष्ट वचनों का प्रयोग करना।

ख

खमाजुत्तो—उत्तम क्षमा युक्त है।
खमा-बलस्स—क्षमा से बलिष्ठ है।

खमा-हारस्स—उत्तम क्षमा ही इसका आधार है ।

खले—खलियान में ।

खवणादि—उपवासादि ।

खाइयं—खाद्य (लड्डू, गुभिया आदि) ।

खीणवंतो—क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती ।

खुड्डयाणं-खुड्डीयाणं—क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओं को ।

खुल्लय—एक प्रकार की कौड़ी ।

खेड—विनोद ।

खेड—खेड़ में, धूलि के प्राकार वाला नगर अथवा नदी तथा पर्वतों से वेष्टित नगर ।

खेत्त-वत्थूणं—जमीन और मकान आदि के ।

खेत्त-वड्ढीएण—किये हुए क्षेत्र की मर्यादा बढ़ा ली हो ।

खंति-मग्गं—शान्ति और क्षमा का मार्ग है ।

खंति-मग्ग-पयासयस्स—परम क्षमा के मार्ग का अर्थात् इष्ट और अनिष्ट में समभाव का उपदेशक है।

खंतिवंतो—क्षमा धारण करने वाले ।

ग

गण्डवाल—गण्डबाल ।

गद्दियं—गादी ।

गरहणदाए—गर्हणता पूर्वक (गुरु-साक्षी पूर्वक निन्दा) ।

गरहामि—गुरुओं के समक्ष सरल चित्त से बालकवत् निर्भय होकर अपने दोषों को प्रकट करना गर्हा है ।

गरहिदाणि– कहे गये हैं ।

गवेडयं—भेड़ ।

गारवेण—महत्त्वाकांक्षा से ।

गिह-कम्मेसु—गृह-कर्म में ।

गोपुरो के शिखरों से अभिन्न ईंट और पत्थर आदि के द्वारा जो प्रतिमाएँ चिनी जाती है, उन्हें गृहकर्म कहते हैं।

गिहिदट्ठे—गृहीतार्थ ।

गुत्तीओ—गुप्ति ।

सम्यक् प्रकार से योगों का निग्रह करना गुप्ति है ।

गुरुपयासे—गुरु के समीप ।

गोजुव—गाय, भैंस आदि के स्तनादि पर लग जाने वाली चिचड़ी ।

गोभिद—गोभिद-तीन इन्द्रिय जीव ।

गोमक्खियाइया—गोमक्षिका-चतुरिन्द्रिय जीव ।

गोष्पदायते—गाय के खुर के समान (झलकते हैं) ।

गथ-परिमाणं—परिग्रह का परिमाण करना ।

घ

घट्टिदे—शुद्ध और अशुद्ध भोजन (भाजन में) मिलाकर देना ।

घोसे—घोष मे । गौओं का बाड़ा ।

च

चउवीस-तित्थयरपदे—चतुर्विशति तीर्थंकर पद में ।

चक्कलं—झूले का पाटिया ।

चम्मजं चमड़े का कपडा ।

चरित्तसिद्धाणं चरित्र से सिद्ध होने वाले ।

चाउवण्णो—चार प्रकार के । (ऋषि, मुनि, यति, अनगार) ।

चित्त-कम्मेसु—चित्रकर्म में ।

दो पैर, चार पैर, बिना पैर और बहुत पैरवाले प्राणियों की प्रतिमाएँ भित्ति, वस्त्र और स्तम्भ आदि पर रागवर्त

आदि वर्ण विशेषों के द्वारा चित्रित की जाती हैं, उन्हें **चित्रकर्म** कहते है।

चेइय-गिहम्मि—मन्दिर में या गृह में।

चेइय-रुक्खा-चेइयाणि—चैत्य वृक्ष और कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय।

चेइयाहिमुहो—मन्दिर में प्रतिमा की ओर मुख करके।

चंकमणे—व्यर्थ घूमने में।

छ

छिण्णा—छेदन।

छेएण वा—अंगोपांग छेदे हों।

छेदोवट्ठावणं—छेदोपस्थापन अर्थात् प्रमाद से लगे दोषों का निराकरण होकर पुनः व्रतों की स्थापना।

छेयंकरा—असद्-उद्भावनी।

वीर्य, शीलादि गुणों का नाश कर देने वाली अथवा असद्-भूत दोषों का उद्भावन करने वाली भाषा।

ज

जडधिया—जड़बुद्धि वाले।

जत्थ ठिया जीवा—जिसमें स्थित मोक्षार्थी जीव।

जराइया—जर सहित पैदा होने वाले मनुष्य एवं गाय-भैंस आदि।

जस्संतियं—जिनेन्द्र भगवान के समीप ही।

जहामि—छोड़ता हूँ।

जहुत्तमाणेण—यथोक्तमान।

शक्ति के मान को जहुत्तमाण कहते है। शक्ति प्रमाण तप करना अथवा चन्द्रायण आदि व्रत में एक ग्रास, दो ग्रास आदि की जो विधि कही है अथवा कायोत्सर्ग की जो और जितनी बार करने की विधि कही है, उसी अनुसार करना यथोक्तमानवीर्य है।

जाणि काणि वि—जो कोई भी ।
जाणं—यान (पालकी) ।
जादेण—अल्प ।
जायण-रहियं—दीनता रहित ।
जिणमग्ग—जिनमार्ग का ।
जीविदासंसणेण वा—जीवित रहने की आशा रखना ।
जुगं—शकट का एक अंग, धुर, गाड़ी या हल खींचने के समय जो बैलों के कन्धे पर रखे जाते हैं ।
जुगंतर-दिट्ठिणा—चार हाथ प्रमाण भूमि देखकर ।
जुदिं—द्युति (तेज या चमक) ।
जो जादो तं—जो दोष हुए हों उन्हें ।
जंपाणं—जपान (वाहन-विशेष) अथवा शिविका विशेष ।

झ

झाण-जोग-परिट्ठिदो—ध्यानयोग में सब ओर से स्थित ।
झाणं—ध्यान तप । धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान की भावना ध्यान तप है ।

ठ

ठविदे—जिस पात्र में भोजन पकाया गया है उसमें निकालकर दूसरे बर्तन में रखा हुआ आहार ।
ठवंतेण—रखते हुए ।
ठाण-मोण—स्थान-मौन ।
ठाणे—ठहरने में अथवा खड़े होने में ।
ठिदिकरण—स्थितिकरण ।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भ्रष्ट हुए जीवों को देख, धर्म-

बुद्धि कर सुख के निमित्त हित-मित वचनों से उनके दोषों को दूर करके धर्म में दृढ करना **स्थितिकरण** है।

ठिदि—आयुकर्म की स्थिति।

ड

डज्झमि—जल रहा हूँ।

डव-डव-चरियाए—अतिशीघ्र से अर्थात् ऊपर को मुख करके जल्दी-जल्दी इधर-उधर गमन करने के कारण।

डंबरियाए—कलहादि की कथा करना।

ण

णमोक्कारपदे—'णमो अरिहंताणं' इत्यादि पंच-नमस्कार पद।

णमोत्थुदे—नमस्कार हो।

णयसिद्धाणं—नय से सिद्ध होने वाले।

णर-पवर-लोय-महिए—मनुष्य - लोक में चक्रवर्ती आदि श्रेष्ठ पुरुषों में पूज्य।

णाणज्झाण-साहणस्स—ज्ञान और ध्यान का मुख्य साधन है।

णाण-देवय—श्रुतदेवता, सरस्वती देवी।

णाणाचिंतासु—पूर्व मे भोगे हुए भोगो का अनेक प्रकार से स्मरण करने में।

णायापहारेण—धरोहर हरण कर लेने से।

णिक्कंखिय—निःकांक्षिता चार।

इस लोक तथा परलोक सम्बन्धी आशारूप भोगाकांक्षा निदान के त्याग के द्वारा केवलज्ञानादि अनन्तगुणों की प्रकटतारूप मोक्ष के लिए ज्ञान, पूजा, तपश्चरण इत्यादि अनुष्ठानो का जो करना है, वही निष्कांक्षित गुण है।

अथवा बलदेव, वासुदेवादि पदों की तथा एकान्तवाद से दूषित मतों की आकांक्षा नहीं करना।

णिगूहियं--छिपाकर।

णिग्गमणे—गमन क्रिया के आरम्भ में।

णिच्चकालं—नित्यकाल अथवा सर्वदा।

णिज्जाण-मग्गं—चतुर्गति के परिभ्रमण के अभाव का मार्ग है।

णिट्ठुरा—निष्ठुर भाषा। "मैं तुझे मारूंगा, तेरा सिर काट लूंगा।"

णिट्ठुल्लकहाए--मर्मभेदी कठोर वचनों का प्रयोग करना।

णित्थारयं--दु:खरूप दुस्तर दु:ख से निस्तारक।

णिदाणेण वा—व्रतादिक पालन कर सांसारिक सुख की इच्छा करना।

णिद्दिट्ठियडेण—निर्दिष्ट कृत। "यह आपके लिए ही बनाया है" ऐसा कहने पर भी वह आहार ग्रहण करना।

णिब्भय- निर्भय।

णिम्ममत्तिं--निर्ममत्वपने को।

णिम्मल--द्रव्य मल (द्रव्य कर्म) और भाव मल (भाव कर्म) रहित।

णियमम्मि-ट्ठिदो- नियम मे स्थित।

णियमावासय—नियमो और षड़ावश्यकों का।

णियत्तो—निवृत्त होता हूँ।

णियदि-लक्खणस्स--विषयों की व्यावृत्ति से लक्षित है।

णियाण-सल्लाए--निदान शल्य में।

पारलौकिक भोगों की अभिलाषा को निदान-शल्य कहते है।

णियंच्छे—प्राप्त होता हूँ।

णिव्वाण-मग्गस्स—मोक्ष का साक्षात् कारण है।

णिव्विदिगिंच्छा—निर्विचिकित्साचार।

स्वभाव से अपवित्र और रत्नत्रय से पवित्र ऐसे

धर्मात्माओं के शरीर में ग्लानि न करना और उनके गुणों में प्रीति करना **निर्विचिकित्साचार** है।

णिसण्णे—बैठने में।

णिसण्णेण पडिक्कंतं—परीषह आदि से पीड़ित होकर उन्हें छोड़ दिया।

णिसीहियपदे—निसहिय (निस्सही, प्रवेश करना) पद।

णिस्संकिय—दर्शनाचार का प्रथम भेद निःशंकिताचार।

वस्तु का स्वरूप यही है, और नहीं है, इसी प्रकार का है, अन्य प्रकार का नहीं है, इस प्रकार से जिन भगवान द्वारा उपदिष्ट प्रवचन में तलवार के पानी के समान निश्चल श्रद्धान निःशंकित अंग कहा जाता है। णिस्संग-बाह्य और आभ्यंतर परिग्रह से रहित।

णिहिय-विसरीयं—रखा हुआ और भूला हुआ।

णिहतव्वा—हनन (नाश) करना।

णीरय—रज (ज्ञानावरण-दर्शनावरण) से रहित।

णीराय—राग रहित।

णेगाइयं—परिपूर्ण रत्नत्रय के समूह से उत्पन्न होने के कारण नियम है।

णेव सयं पाणादिवादिज्ज—इन सर्व जीवों के प्राणों का घात स्वय न करे।

णो-इंदिय—मन।

त

तक्कं—तर्कशास्त्र।

तणं—तृण (घास)।

तदुभये—श्रुतज्ञानाचार का आठवाँ भेद उभयाचार।

शब्द और अर्थ दोनों की शुद्धिपूर्वक स्वाध्याय करना उभयाचार है।

तव-पत्त-पवाल—अंकुर, पत्ते, प्रवाल ।
तवप्पहावरण—तप की प्रभावना करने वाले ।
तवसिद्धाणं—तप से सिद्ध होने वाले ।
तस्संतिय—उनके समीप ही ।
तारयं—संसार रूप महार्णव से उत्तारक ।
ति-गारव-गुरु-गदाए—तीन गुप्तियों से रक्षित है ।
तिण्हं-छावट्ठि-सय—तीन सौ छासठ ।
तियरण-सुद्धो—मन, वचन और काय की शुद्धि से ।
तिलोय-णाहेहिं—त्रिलोकीनाथ के द्वारा ।
तंतु—तन्तु बनाने वाले जीव ।

थ

थएसु—स्तवनों में ।
एक साथ अनेक तीर्थकरों के गुणों का वर्णन करना **स्तवन** है ।
थुइसु—स्तुतियों में ।
एक तीर्थकर के गुणों का ख्यापन करना **स्तुति** है ।
थूलयड—स्थूल ।
थेण-पओगेण-वा—चोरी का प्रयोग बतलाया हो ।
थेण-हरियादाणेण वा—चोर द्वारा चुराया हुआ द्रव्य ग्रहण किया हो ।
थेर—स्थविर ।
थोस्सामि—स्तवन करता हूं ।

द

दय—जल के विकार बर्फ, ओला आदि अथवा अप्रासुक जल ।
दयसंसिट्ठयडेण—अनुकम्पा से दिया हुआ आहार अथवा गीले बर्तन से, गीले हाथों से दिया हुआ आहार ।

दिट्ठियाए—दृष्टि क्रिया। स्त्री-पुरुषों के अंगोपांग देखने की अभिलाषा।

दिट्ठिविप्परियासियाए—दृष्टि-विपर्यास।
स्त्री के वदन, जंघादि अवयवों को नहीं देखने पर भी मैंने देखा है, ऐसा अभिनिवेश होना दृष्टि-विपर्यास है।

दिढव्वदं—अखण्ड व्रत।

दिवसाणं—कालदोष से पंचमकाल के जीवों के कुटिल परिणाम होते हैं, अत. गौतमस्वामी ने इस समय के मुनिराजों को पंचाचार आदि में लगे दोषों की शुद्धि के लिए दिनों की गणनापूर्वक आलोचना करने का विधान कहा है।

दुच्चरियं—दुष्चेष्टाओं का। खराब आचरण।

दुच्चिंतिओ—खाने-पीने योग्य न होते हुए भी खाने-पीने के योग्य चिन्तन किया हो।

दुट्ठ-कयं—मैंने जो दुष्ट काम की चेष्टा की है।

दुप्परिणामिओ—अयोग्य आहार खाने के लिए शरीर से स्वीकारता दी गई हो।

दुब्भासिओ—'अयोग्य आहार खावें' ऐसा वचन से कहा गया हो।

दुरात्मना—दुष्ट।

दुस्सुमिणिओ—अयोग्य आहार स्वप्न में खाया गया हो।

देसकहाए—देश की कथा करना।

दोणमुहे द्रोणमुख में। जल और स्थल के मार्ग वाला शहर।

दंत-कम्मेसु—दन्तकर्म में। हाथी के दाँत मे जो प्रतिमाएँ उत्कीर्ण की जाती हैं उन्हें दन्तकर्म कहते हैं।

दंसण-सावओ—दार्शनिक श्रावक।

दंस-मसय—डाँस-मच्छर।

दंसणी—सम्यग्दर्शन को धारण करने वाले।

ध

धण-धाणाणं—गाय,बैल आदि धन और अनाज आदि धान्य को।
धम्म-णायगाणं—धर्मानुष्ठान करने वाले सर्व साधुओं का।
धम्मदेसयाणं—धर्मोपदेशकों का (उपाध्यायों का)।
धम्म-वर-चाउरंग-चक्कवट्टीण—धर्मरूप चतुरग सेना के अधिपति धर्मचक्रवर्तियों का।
धम्माइरियाणं—धर्माचार्य को।
धम्माणुरायरत्तो—धर्मानुरागरत।
धादु-कम्मेसु—धातु से जो प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं उन्हें धातुकर्म कहते है।
धिदिमंतो--धृतिमान् (धैर्यवान्)।

न

नमितविद्विषे—नमस्कार कराया है उपसर्ग करने वाले संगम नामक देवशत्रु को जिसने।
निर्धूत-कलिलात्मने- जो अपने तथा दूसरों के ज्ञानावरण आदि कर्मरूप पापो के नाशक है।

प

पइट्ठावणियाए—एक स्थान में बनाये हुए भोजन को दूसरे स्थान मे अथवा एक बर्तन में रखे हुए भोजन को दूसरे बर्तन में रखकर आहार लिया हो।
पइट्ठावतेण-क्षेपण करते हुए।
पइण्णएसु—प्रकीर्णको में।
पउंजे—प्रयुक्त करता हूँ।
पच्चएसु—(कर्मबंध के कारणभूत) प्रत्ययों में।

पच्चक्खाणपदे—'भंते पच्चक्खामि' इत्यादि प्रत्याख्यान पद।
पच्चक्खामि—त्याग करता हूँ।
पच्छत्तावेण—पश्चाताप से।
पच्छाकम्मेण—पश्चात् कर्मकृत। मुनिराज के आहार करके चले जाने के बाद फिर से भोजन बनाना।
पच्छिम-सल्लेहणा-मरणं—अंतिम सल्लेखनापूर्वक मरण।
पज्जुवासं—(अरहंत-आदिकों की) सेवा करना, भक्ति करना।
पट्टणे—पत्तन में, नगर, शहर में।
पडिक्कंतं—दोषों का निराकरण हो जाने से।
पडिक्कमणपदे—'पडिक्कमामि भंते' इत्यादि प्रतिक्रमण पद।
पडिक्कमामि—भूतकालीन दोषों का निराकरण करता हूँ।
पडिदं—पतित।
पडिपुण्णं—(निर्ग्रन्थ लिंग) अयोगकेवली तक पाया जाने से अथवा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करने में कारणभूत होने से परिपूर्ण है।
पडिरूवय-ववहारेण—अधिक कीमती वस्तु में अल्प कीमत की वस्तु मिलाकर बेची हो।
पडिवदाए—प्रतिपदा।
पडिविरदोमि—विरक्त होता हूँ।
पडिसयाहिलासपरिणामे—मठ आदि के आश्रय से होने वाले परिणाम मे।
पडिसेवियं—पुनः सेवित।
पणय—सेवाल, काई आदि।
पणयभोयणाए—इष्ट मधुर सहित कांजी आदि के आहार करमे में अर्थात् गरिष्ठ पदार्थो का आहार करने में।
पण्णरसण्हं—पन्द्रह।
पत्तियामि—प्राप्त होता हूँ।

पदहीणं—सुबन्त, तिङन्त आदि पद की हीनता की हो।

पदोसियाए—क्रोधादि के द्वारा उत्पन्न मन, वचन, काय सम्बन्धी प्रदोषक्रिया में।

पदोसेण—उत्कृष्ट रोष से।

पदोसं—द्वेष।

पदं—पद।

पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं—प्रमाद से अतिक्रम और अतिचार रूप जो दोष लगे हों उनकी शुद्धि के लिए।

पमुट्ठं—प्रमृष्ट। निरस्त।

पमुत्ति-मग्गं—तिल-तुष मात्र परिग्रह का त्याग अथवा परम निःस्पृह भाव स्वरूप होने से उत्कृष्टतः मुक्ति का मार्ग है।

पमोक्ख-मग्गं—अरिहंत और सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का उपाय है।

पयट्ठियाणं—विराजमान (स्थित)।

पयंग—शलभ या पतिंगा।

पर-उवएसेण वा—परोपदेश से।

परकोहिणी—परकोपिनी।

पर-दव्व-मगिण्हं—पराया द्रव्य ग्रहण नहीं करना।

पर-दुगुंछणदाए—दूसरों के समक्ष दुष्ट भावों से दूसरों की निन्दा करना।

परदो—सीमा से बाहर।

पर-परिवादणदाए—दूसरों के दोषों को प्रकट करना।

पर-पासंड-कहाए—पर-पाखण्डियों की कथा में।

पर-पासंड-पसंसणदाए—मिथ्यामार्ग और उसके सेवन करने वालों की मन से प्रशंसा की हो।

पर-पीडा-कराए—दूसरों को पीड़ा पहुँचाना ।

पर-पेसुण्णकहाए—दूसरों की चुगली करना अथवा परोक्ष में दूसरों के दोषों की चर्चा करना ।

पर-लोय-सण्णाए—परलोक सम्बन्धी आहार, भय, मैथुन, परिग्रह सज्ञाओं में ।

परिक्कमेण—वीर्याचार का पाँचवाँ भेद—पराक्रम से ।
आगम में व्रत-पालन का जो उत्कृष्ट क्रम कहा है, यथा-मूलगुणों के अनुष्ठान करने वालों को उत्तरगुणों का अनुष्ठान करना चाहिए, न कि इससे विपरीत । इसका नाम **पराक्रम वीर्याचार** है ।

परिच्चाय-फलस्स—बाह्याभ्यन्तर परिग्रह के त्याग का फल है ।

परिणिव्वायंति—सुखी अथवा कृतकृत्य हो जाते हैं ।

परिणिव्वुदाणं—मोक्ष प्राप्त करने वालों का ।

परिग्गहिदापरिग्गहिदा-गमणेण—कुमारी, विधवा एवं सधवा आदि परिगृहीत और वेश्या आदि अपरिगृहीत स्त्रियों के साथ आने-जाने या लेन-देन का व्यवहार रखा हो ।

परिदावणियाए—परितापन क्रिया से । दुष्ट मन-वचन-काय के द्वारा दूसरो को पीड़ा पहुँचाना ।

परिमासे—चारों तरफ के शरीर को छूने में ।

परिमंडिग्रस्स—परिमण्डित (युक्त) ।

परियट्टणे—उठकर बैठने में और फिर सो जाने में ।

परियत्तणे—परिवर्तन करने में, करवट बदलने में ।

परिवज्जामि—त्याग करता हूँ ।

परिविज्जाणंति—परिनिर्वाण को प्राप्त होता हूँ ।

परिसादणियाए—हाथ में आये हुए भोजन को ज्यादा गिरागिराकर आहार किया हो ।

परिहाविदो—हीन किया हो । अथवा सामर्थ्य छिपा लेना परिहापन है ।

परीसहाण-उरं—परीषहों को सहन करता है ।

परुसा—मर्मभेदिनी भाषा (कठोर) । यथा-तू अनेक दूषणों से दूषित है ।

पलोयणे—स्त्रियों के साथ क्रीड़न ।

पवक्खामि—कहता हूँ ।

पवत्थु—प्रवास्तु ।

पवयणस्स—परमागम में इसका स्वरूप प्रतिपादित है ।

पवयणी—प्रवचन करने वाले (देने वाले) पुरुष ।

पवालयं—प्रवाल (मूंगा) ।

पव्वज्जामि—प्राप्त करता हूँ ।

पव्वत्ति—सन्मार्ग में प्रवृत्ति करने वाले प्रवर्तक ।

पसारणे—हाथ-पैर पसारने (फैलाने) में ।

पसंथुए—शुभाचरण पालन कर ससार-सुख की वाञ्छा की हो । अथवा मिथ्यामार्ग की वचन से स्तुति की हो ।

पस्संता—देखते हुए ।

पहावणा—प्रभावना ।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रय से आत्मा को प्रकाशमान करना अथवा अज्ञान रूपी अन्धकार के विनाश को जिस प्रकार बने उस प्रकार दूर करके जिनमार्ग का समस्त मतावलम्बियों मे प्रभाव प्रकट करना **प्रभावना** अग है ।

पहीण-जर-मरणा—जरा और मरण से रहित ।

पहे—पथ मे ।

पाउग्ग-गरहणदाए—ग्रहण करने योग्य सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, सयम और तप का वृद्धि करने वाले साधनों का अनादर अथवा उनकी गर्हा-निन्दा की हो ।

पाण-चंकमणदाए—विकलेन्द्रिय जीवों पर चलने में।

पाण-भूद-जीव-सत्ताणं—विकलेन्द्रिय प्राणी, वनस्पतिकायिक जीव, पचेन्द्रिय जीव, पृथिवीकायिक-जलकायिक-अग्निकायिक और वायुकायिक जीव।

पाणभोयणाए—पानक आहार में स्निग्ध रुक्ष आदि पीने योग्य पदार्थ के भक्षण में।

पाणाइवाइयासु—पाँच इन्द्रियाँ, मन-वचन-काय योग, आयु एवं श्वासोच्छ्वास— इन दस प्राणों का वियोग करने में।

पाणादिवादादो वेरमणं—प्राणों के व्यतिपात से विरक्त होना।

पाणिवहं—प्राणी का वध होता हो।

पाणे अदिवादावेज्ज—जीव का घात स्वयं किया हो।

पाणं—पान (जल, छाछ, दूध आदि)।

पान्तु—रक्षा करें।

पायच्छित्तं—प्रायश्चित्त नामक अन्तरंग तप।

लगे हुए दोषों की शुद्धि करने के लिए दण्ड लेना प्रायश्चित्त तप है।

पारगयाणं—संसार-समुद्र को पार करने वाले पारगतो का।

पारय—ससार-समुद्र मे पड़ने वाले जीवों का पालक।

पालि-दट्ठे—पालितार्थ अथवा रक्षितार्थ।

पावकम्मं—पापकर्मों का।

पाव-जोग-परिणामे—सावद्ययोग के परिणाम में।

पाहुडदे—परावर्त (बदला हुआ)।

पंचमी के दिन आहार देने का नियम करके नवमी के दिन देना, नवमी के दिन आहार देने का विचार करके पंचमी के दिन देना।

पिपीलियाइया—लाल-काली चीटियाँ।

पिवास-सल्लाए– बाण के समान निरन्तर चुभने वाली, ऐहिक विषयों की इच्छा को पिपासा-शल्य कहते हैं ।

पिवासेण—विषय-सेवन की गृद्धता से ।

पीढ—पीढ़ा । बैठने के लिए पीठ । अथवा पाटा या सिंहासनादि ।

पुग्गलखेवेण वा—कंकर-पत्थर आदि फेंककर अन्य मनुष्य द्वारा मर्यादा के बाहर कार्य कराया हो ।

पुग्गल-संघट्टणदाए– शरीर के अन्य अवयवों का संघर्षण ।

पुट्ठियाए—पुष्टिक्रिया ।

स्त्री-पुरुषों के अंगों का अनुरागपूर्वक स्पर्श करने की इच्छा ।

पुट्ठो वा पुट्ठो वा—पूछे जाने पर अथवा बिना पूछे ही ।

पुर-गाम-पट्टणाइसु—नगर, ग्राम और चौराहे आदि में ।

पुरा-कम्मेसु—पुरा कर्मकृत ।

मुनि के आहार ले चुकने के पहले भोजन बनाना प्रारम्भ कर देना ।

पुरं—नगर ।

पुव्वखेलिए– पूर्व (गृहस्थावस्था) में क्रीडा की हो उसमें ।

पुव्वचिणं—अतीत काल में उपार्जित ।

पुव्वरए– पूर्व (गृहस्थावस्था) मे जिसका अनुभव किया हो उस में ।

पुव्वरयाणुस्सरेण वा– पूर्व काल में भोगे हुए विषयों का स्मरण कर मन विकारी किया हो ।

पुव्वुद्दिट्ठा– पूर्व कथित ।

पेम्माणुरायरत्तो– प्रेमानुरागरत ।

पेम्मेण स्नेह से ।

पोत्थयं पुस्तक ।

पोत्तकम्मेसु—वस्त्रों पर बनी आकृतियों में ।

पोदाइया—पैदा होते चलने - फिरने और भागने वाले हिरण आदि ।

पंच-महव्वय-संपरणस्स—पञ्च महाव्रतों से सुशोभित है ।

पंचवरिसादो-परदो—युग प्रतिक्रमण में पाँच वर्ष से परे (बाद में) ।

पंचुबर सहियाइं—बड़, पीपल, कठूमर, पाकर और ऊमर इन पाँच उदुम्बर फलों के साथ ।

पंडिय-मरणं—पण्डितमरण ।

निर्मम, निरहंकार, निष्कषाय, जितेन्द्रिय, धीर, निदान-रहित सम्यग्दर्शनसम्पन्न जीव मरते समय आराधक होता है, उसके पडितमरण होता है। जो भक्त-प्रत्याख्यान, इगिनी और प्रायोपगमन के भेद मे तीन प्रकार का है।

पंथादिचारस्स—मार्ग आदि म ।

प्रचुराः—अनेकानेक (प्रचुर, बहुत) ।

प्रतिक्रमण—भूतकालीन दोषों का निराकरण करना प्रतिक्रमण है ।

प्रतिष्ठापन—प्रारम्भ ।

प्रमादजनिताः—प्रमाद से उत्पन्न हुए ।

प्रलयं प्रयान्ति—नाश को प्राप्त होते हैं ।

प्रीणन्तु—रक्षा करे-प्रसन्न होवे ।

फ

फलह—फलक । शयन करने हेतु पाद रहित काष्ठ (फाड़) आदि ।

ब

बद्धं—स्वयं बाँधा हो ।

बलिपाहुडदे—यक्ष, नाग, आदि की बलि के लिए बनाया हुआ नैवेद्य ।

बलेण—बल से, वीर्याचार का तीसरा भेद । काल, क्षेत्र, आहारादि द्वारा शारीरिक बल ।

बलं—हस्ती, अश्व, रथ, पदाति चतुरंग सैन्यबल ।

बहित्थं—बाहर स्थित ।

बहुमाणे—बहुमान, श्रुतज्ञानाचार का चौथा भेद ।
कृतिकर्म पूर्वक स्वाध्याय करना बहुमानाचार है !

बीश्रा—बीज ।

बुज्झंति—जीवादि तत्त्वों के स्वरूप को यथावत् जानते हैं ।

बुद्धा—हेयोपादेय ज्ञान से युक्त ।

बुद्धिमंतो—कोष्ठ आदि बुद्धि को धारण करनेवाले ।

बोधि—पूर्व में नही प्राप्त हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होना बोधि है ।

बोहियबुद्धा—ससार, शरीर, विषय आदि में पर-उपदेश से वैराग्य को धारण करने वाले ।

बोहिलाहो—बोधि का लाभ हो ।

बंभारंभ—ब्रह्मचर्य, आरम्भ-त्याग ।

भ

भयवंताणं—भगवन्तों को ।

भासकहाए—१८ प्रकार के देशों से उत्पन्न होनेवाली भाषाओं की कथा करना ।

भासाविश्रो—दूसरों से भाषण कराया हो ।

भासासमिदी—चुगली, निन्दा, आत्म-प्रशसा आदि का परित्याग करके हित, मित और प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है ।

भासिश्रो—भाषण किया हो ।

भासिज्जंतो—भाषण करने वालों की अनुमोदना की हो ।

भासियत्थं—कहा है ।

भासिय—वचन कहे हैं ।

भासुरवर बोहिधरा—उज्ज्वलतर अवधिज्ञान को धारण करने वाले ।

भिक्खायरणेण—भिक्षावृत्ति से ।

भिण्णा—भेदन ।

भित्तिकम्मेसु—भित्ति पर निर्मित कर्म में । दीवालों की सजावट का कार्य ।

भुत्तं—पूर्व अनुभूत ।

भूदकम्मेसु—भूत (अविद्यमान) कर्म में ।

भूयाण-वहंकरा—वधकरी ।

प्राणियों के प्राणों का हरण करने वाली भाषा ।

भेद-कम्मेसु—कैंची आदि से वस्त्र आदि को काट कर निर्मित ।

भोगोपभोगाणत्थंकेण वा—भोगोपभोग की वस्तुएँ आवश्यकता से अधिक निष्काम-संग्रह की हों ।

भोयण-विप्परियासियाए—भोजन-विपर्यास ।

भोजन नहीं करने पर भी मैंने भोजन किया है ऐसा अभिनिवेश या संकल्प होना भोजन-विपर्यास है ।

भंड—औषध एवं तेल आदि के पात्र ।

भड-कम्मेसु—भेंड अर्थात् हाथीदांत से घड़ी गई प्रतिमाओं को भेंड कर्म कहते है ।

म

मएसु—मद में ।

मक्कडय—मकड़ी ।

मक्कुण—खटमल ।

मच्छरिएण वा—दान देते समय अन्य दानदाताओं से ईर्ष्या या मात्सर्य-भाव किया हो ।

मज्झत्थं—घर में स्थित ।

मज्झिमाए—मध्यमा नगरी ।

मज्झंकिसा—मर्मछेदनी । ऐसी निष्ठुर भाषा जो हड्डियों के मध्य भाग का भी छेदन कर दे ।

मडवे—मटम्ब में । ग्राम ।
जिसके चारों ओर एक योजन तक कोई गाँव न हो ऐसा गाँव ।

मणगुत्तीओ—मनोगुप्ति ।
अशुभ परिणामों के निरोध को मनोगुप्ति कहते है। अथवा राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अशुभ भावों मे मन को मुक्त रखना ।

मण-दुच्चरियस्स—मानसिक दुष्ट चेष्टाओं का ।

मण-दुप्पणिधाणेण वा—मन की स्थिरता नही रखी ।

मणविप्परियासियाए—मनोविपर्यास ।
स्त्री के नही होने पर भी स्त्री है, ऐसा संकल्प होना मनोविपर्यास है ।

मणुण्णामणुण्णेसु—मनोज्ञ-अमनोज्ञों मे ।

मणोमाणसियं—परकीय चित्त (मन) मानसिक चेष्टा ।

मत्थयम्मि—मस्तक पर ।

मद्दवं—मार्दव धर्म ।

मरणासंसणेण वा—मरण का भय करना अथवा शीघ्रता से मरण की इच्छा रखना ।

महप्पण्णे—महात्माओं का या महापूजा को प्राप्त करने वाले महाप्राज्ञो का ।

महा-कस्सवेण—महान् काश्यपगोत्रीय ।

महागुणे—अनन्त ज्ञानादि गुण प्रकट होते हैं ।

महाजसे—महायश ।

महापुरिसाणुचिण्णे—महापुरुषानुचिह्न ।

महुयर—मधुमक्खी ।

महु-मंस-मज्ज-जूआ-वेसादि-विवज्जणा—मधु, मांस, मद्य, जूआ, वेश्या व्यसनादि का त्यागी।

मायाविना—मायाचारी।

मिच्छत्त-पाउग्गं—मिथ्यात्व के वश से अधर्म-अतत्त्व में रुचि होना।

मिच्छामेलिदं—किसी अक्षर या शब्द को अविद्यमान अक्षर या शब्द के साथ मिलाकर पढ़ा हो। अथवा पदच्छेद किये बिना पढ़ा हो।

मिच्छोवदेसेण—मिथ्या उपदेश देने से।

मित्ताणुराएण वा—मित्रजनों से प्रेम करना।

मिस्से जादे—लिंगी, असंयमी, गृहस्थ आदि सब के लिए बनाया हुआ आहार।

मुच्चंति—सम्पूर्ण कर्मों से छूट जाते हैं।

मुच्छिदे—अति आसक्ति से भोजन करना।

मुत्ति-मग्ग-देसयस्स—मुक्ति मार्ग अर्थात् कर्मों की एकदेशनिर्जरा के उपाय का प्रकाशक है।

मुत्तीओ—बहिरंग और अन्तरंग परिग्रह का त्याग।

मुनि-बोधनार्थं—मुनियों को ज्ञान प्रदान करने के लिए।

मुसावादादो वेरमण—मृषावाद से विरक्त होना।

मूरण—नष्ट करता हुआ।

मेहुणादो वेरमणं—मैथुन से विरक्त होना।

मोक्खमहि-कुसले—मोक्ष-पथ में कुशल।

मोक्खरिएण वा—धृष्टतापूर्वक व्यर्थ बकवास किया हो।

मोसं—असत्य का।

मंगल—जो पाप को गलाने वाला-नाश करने वाला है और सुख को लाने वाला है, उसे मंगल कहते हैं।

मंगलपदे—'चत्तारि मंगलं' इत्यादि मंगल पद ।

मंडण-तंबोल—शरीर-शृगार सम्बन्धी एवं पान का ।

मंडले—मंडल में । समूह, यूथ अथवा देश में ।

य

यथा-कहिद-पडिमासु—(इन) ऊपर कही हुई प्रतिमाओं में ।

र

रइदे—रसना इन्द्रिय को लोलुप बनाने वाला नाना रस के द्वारा बनाया हुआ भोजन अथवा अति आसक्ति से बनाया हुआ आहार ।

रक्खिया—स्वयं सरक्षण किया हो ।

रस-परिच्चाओ—रस-परित्याग ।

दूध, दही, घी, नमक, तेल, मीठा इन छह रसों मे से एक या एकाधिक रसो का अपनी शक्ति के अनुसार त्याग करना **रस-परित्याग** है ।

रस-ससिट्ठयडेण—तेल आदि से भरे चिकने बर्तन से अथवा हाथ से ग्रहण करने से अथवा धूल, आटे आदि से भरे हुए बर्तन से आहार लिया हो ।

रसाइया—रस में उत्पन्न होने वाले ।

रहोअब्भक्खाणेण—एकान्त मे कही हुई बात को प्रकट कर देने से ।

रहं—रथ ।

रागद्वेष-मलीमसेन—रागद्वेषरूपी मल से मलिन ।

रिट्ठय—शरीर में उत्पन्न होने वाला तन्तु सदृश जीव ।

रुक्ख-मूल—वृक्षमूल योग ।

वर्षाऋतु मे वृक्ष के नीचे बैठना वृक्षमूल योग है ।

रुद्दज्झाणे—रौद्रध्यान में ।
रूवाणुवाएण वा—रूप दिखा कर कार्य सिद्ध किया हो ।
रोमजं—ऊन का वस्त्र ।

ल

लय-कम्मेसु—शिलास्वरूप पर्वतों से अभिन्न जो प्रतिमाएँ बनाई जाती है उन्हें लयनकर्म कहते हैं ।
लाहवेण—कर्मो की लघुता से ।
लेप्प-कम्मेसु—मिट्टी, खड़िया और बालू आदि के लेप से जो प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं, उन्हें लेप्यकर्म कहते है ।
लोगुत्तमपदे—'चत्तारि लोगुत्तमा' इत्यादि लोगुत्तम पद ।
लोगुत्तमा—लोक में उत्तम ।
लोयस्सुज्जोययरे—केवलज्ञान के द्वारा लोक को प्रकाशित करने वाले ।

व

वक्कलजं—छाल का वस्त्र ।
वच्छल्ल—वात्सल्य ।

मोक्षसुख की सम्पदा के कारणभूत जैनधर्म में, अहिंसा में तथा समस्त ही उक्त धर्मयुक्त साधर्मी जनों मे बछड़े मे गाय की तरह निरन्तर प्रीति करना **वात्सल्य गुण** है ।

वत्थाभरणाण—वस्त्र और आभरण ।
वत्थु—गृह, घर ।
वदमस्सिदो—व्रत को आश्रय प्राप्त ।
वदिक्कमित्तु—व्यतिक्रम (उल्लंघन कर) ।
वदिक्कमो—व्यतिक्रम ।

विषय-वासनाओ मे मन के लीन हो जाने पर आवश्यक

क्रियाओं के काल को कम करना **व्यतिक्रम है**। **अथवा** विषयों की अभिलाषा को **व्यतिक्रम** कहते है।

वदेण—यावज्जीवन व्रत से।

वय-गुत्तीओ—वचन गुप्ति।
स्त्री सम्बन्धी, चोरी या भोजन सम्बन्धी कथन से एवं असत्य भाषण से विरत रहना **वचनगुप्ति** है।

वय-विप्परियासियाए—वचन - विपर्यास।
वचन-व्यवहार का अभाव होने पर भी मैंने सम्भाषणादि किया है, ऐसा अभिनिवेश होना **वचन-विपर्यास** है।

वर-वीरिय-परिक्कमेण—वर वीर्य पराक्रम।
उत्कृष्ट वीर्य को पराक्रम कहते है और वीर्य के ऐसे पराक्रम (उत्साह) को वर वीर्य पराक्रम कहते है।

वराडय--कौडा (बड़ी कौडी)।

वर्वतिषुः—प्रवृत्ति करने की इच्छा करने वाला।

वसणाइं-विवज्जेइ—(जो) जुआ खेलना, मांस खाना, मद्यपान, शिकार खेलना, चोरी करना, वेश्यागमन और परस्त्री-सेवन इन सात व्यसनों का त्याग करता है।

वसंगदेण सयं- स्वयं वशीभूत होकर।

वहेण वा- (जीवों को) मारा हो।

वक्ष्ये--कहूंगा।

वामेलिदं उच्च ध्वनियुक्त पाठ को नीची ध्वनियुक्त पाठ के साथ और नीची ध्वनियुक्त पाठ को उच्च ध्वनियुक्त पाठ के साथ मिलाकर पढ़ा हो।

वालिसदाए—अविवेक से।

वाहणं- हस्ती, अश्व आदि वाहन।

विउस्सग्गो—व्युत्सर्ग तप। धन-धान्यादि बाह्य उपधि का तथा

क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अन्तरंग उपधि का त्याग करना व्युत्सर्ग तप है।

विकहाए—राग, द्वेष आदि के विवरण की कथा करना।

विचित्र-भव-कर्म-विशोधनार्थं—अनेक भवों में उपार्जित किये हुए कर्मों का नाश करने के लिए।

विच्छिय—वृश्चिक अथवा बिच्छू।

विणए—श्रुतज्ञानाचार का दूसरा भेद।

कायिक, वाचनिक, मानसिक एवं औपचारिक विनयपूर्वक स्वाध्याय करना विनयाचार है।

विणिजोगेण वा—मर्यादाक्षेत्र के बाहर वस्तु भेजी हो।

विणीदा—चार प्रकार के विनय को धारण करने वाले।

वित्ति-परिसंखा—व्रतपरिसंख्यान तप।

आहार को जाते समय घर, गली आदि का नियम लेना।

विदिए—दूसरे।

विदिगिंछाए—धर्मात्माओं के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि की हो।

विनय—विनय तप।

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं पूज्य पुरुषों का आदर करना, उनके आने पर उठकर खडा होना, उनके सामने जाना, चलते समय उनके पीछे चलना, हाथ जोड कर नमस्कार करना **विनय** है।

वियडिं- विकृति (गोमय)।

वियाले- सन्ध्याकाल में।

विरुद्ध-रज्जाइक्कमणेण वा—राज्य के विरुद्ध कार्य किया हो।

विराहणं वोस्सरामि—विराधना (रत्नत्रय के विषय में मन, वचन और काय से होने वाली दोष युक्त प्रवृत्ति) का त्याग करता हूँ।

विवज्जिदो—रहित।

विवित्त-सयणासणं—विविक्त शयनासन ।
ब्रह्मचर्य की रक्षा तथा स्वाध्याय की वृद्धि के लिए एकान्त स्थान में सोना व बैठना विविक्त शयनासन तप है।

विसोतियासु—(पूर्व में भोगे हुए भोगों को) बारबार कर्णगोचर करने में ।

विहरदे—विहार करते हैं ।

विहरमाणेण—विहार करते हुए ।

विहारेण—आचरण से ।

विहि-दट्ठे—विहितार्थ अथवा अनुष्ठानार्थ ।

विहुय-रय-मले—ज्ञानावरण-दर्शनावरण रूप रज-मल से रहित ।

विहूसियस्स—अलंकृत ।

वीयभोयणाए—संतरा, मौसमी आदि के बीज का आहार करने में ।

वीरासणेक्कपास—वीरासन एक पार्श्व ।

वीरिएण—वीर्याचार का चौथा भेद, वीर्य से ।
स्वाभाविक आत्मशक्ति के अनुसार तप करना ।

वीरिय-मरणं—वीर्य मरण (वीरतापूर्वक मरण) ।
वीर्य युक्त और दीनता रहित मरण ।

वीरियाचारो—वीर्याचार ।
तपश्चरण करने में अपनी सामर्थ्य प्रकट करना वीर्याचार है।

वीसुत्तर-सय—एक सौ बीस ।

वेज्जावच्च—वैयावृत्त्य तप ।
आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, साधु, मनोज्ञ, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल और संघ इन दस प्रकार के साधुओं पर उपसर्ग आदि के आने पर काय की चेष्टा से उपसर्ग को दूर करना, व्याधिग्रस्त होने पर प्रासुक औषधि आदि देना, उनके ठहरने के लिए स्थान आदि का प्रबन्ध करना; ज्ञान, सयम, शौचादि के उपकरण देना, मिथ्यात्वादि की उत्पत्ति या संयम से च्युत होने पर उन्हे फिर से सम्यक्त्व और

संयम में स्थापित करना, उनके मुख से कफ आदि निकालना, उनके अनुकूल आचरण करना **वैयावृत्य तप** है।

वेयंतो—वेदन करता हुआ।

वोसरित्ता—त्याग कर।

वोस्सरामि—त्याग करता हूँ।

वंदणपदे—'सिद्धानुद्धूत' इत्यादि और 'जयति भगवान्' इत्यादि वन्दना पद।

वंदना—एक तीर्थंकर के गुणों का वर्णन करना वन्दना (स्तुति) है।

श

शरीर-मंडणेण वा—स्त्रियों को आकर्षित करने वाला शरीर का शृंगार किया हो।

स

सइंगाला—अत्यासक्ति से गृहीत।

स-उत्तर-पदाणि—उत्तर पदों (गुणों) सहित।

सक्कारए—सत्कार करता हूँ।

सचित्त-णिक्खेवेण वा—प्रासुक पदार्थों को सचित्त वस्तु में रखा हो।

सचित्तपिहाणेण वा—सचित्त वस्तु से ढका हो।

सच्चाहिट्ठियस्स—सत्य से अधिष्ठित है।

सज्झाओ—स्वाध्याय तप।

परम संवेग एवं तप की वृद्धि के लिए तथा अतिचारों की शुद्धि, निर्मल चारित्र का पालन तथा स्वपर का विवेक प्राप्त करने के लिए वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश रूप पचविध स्वाध्याय करना तथा जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित शास्त्रों को पढना **स्वाध्याय तप** है।

सणिद्धे—स्निग्ध या गीले प्रदेश में ।

सण्णाए—सज्ञाओं मे ।

सभी ससारी जीवों मे आहार, भय, मैथुन और परिग्रह के प्रति जो तृष्णा, वाञ्छा या अभिलाषा पाई जाती है, उसे संज्ञा कहते है । नीचे की भूमिकाओ मे ये संज्ञाएँ व्यक्त होती है और ऊपर की भूमिकाओ मे ये अव्यक्त रहती है ।

सण्णिवेसे—सन्निवेश में ।

सत्ताण—पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायु-कायिक जीव ।

सदि अणुवट्ठावणेण वा—सामायिक के पाठ का विस्मरण हो गया हो ।

सदि अंतराधाणेण—की हुई मर्यादा को भूल गया होऊं ।

सद्दहंतस्स—श्रद्धान करने वाले ।

सद्दाणुवाएण वा—शब्दादि के संकेत से कार्य कराया हो ।

सधूमिया दातार या आहार आदि की निन्दा करते हुए ।

स-भावणाणि—पच्चीस भावनाओं सहित ।

समजोग—परम उपशम योग वाले । (उपशम श्रेणी में स्थित योगी) ।

समणुमण्णामि—अनुमोदना करता हूँ ।

समभाव—समता भाव रखने वाले अर्थात् ससार की वृद्धि करने वाले राग-द्वेष भाव से रहित ।

सममण—शत्रु-मित्र को, काच कंचन को समान समझने वाले । अर्थात् समता परिणाम वाले ।

समया इव पवेसयस्स—समता का प्रवेश इसके अन्तर्गत है ।

समाउग-पदाणि—पाँच समिति और तीन गुप्ति स्वरूप मातृ का पदों सहित ।

समारूढं—उपस्थित है । (अच्छी तरह से आरोहण होवे ।)

समाहि—समाधि ।

मन को शुभोपयोग में अथवा शुद्धोपयोग में एकाग्र करना। जैसे भाण्डागार में आग लग जाने पर बहुत उपकारी होने से आग को शान्त किया जाता है, उसी प्रकार अनेक प्रकार के व्रत और शीलो से समृद्ध मुनि के तप करते हुए किसी कारण से विघ्न के उत्पन्न होने पर उसका धारण करना-शान्त करना **समाधि** है ।

समाहिमरणं—समाधिमरण ।

जब रत्नत्रय में एकाग्रचित्त होकर प्राणों का परित्याग किया जाता है उसे **समाधिमरण** कहते है ।

समिति—व्रतों की रक्षा हेतु गमन आदि क्रियाओं में यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करना **समिति** है ।

सम्मचरित्त—सम्यक्चारित्र ।

जिससे हित को प्राप्त करते है और अहित का निवारण करते है। अथवा ससार की कारणभूत बाह्य और अन्तरंग क्रियाओ से निवृत्त होना। अथवा राग-द्वेष की निवृत्ति होना उसे **सम्यक्चारित्र** कहते हैं ।

सम्मणाण—सम्यक्ज्ञान ।

जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को न्यूनतारहित, अधिकतारहित, विपरीतता रहित, जैसे का तैसा, सन्देह रहित जानता है, उस ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते है ।

सम्मणाण-जोयस्स—सम्यग्ज्ञान सहित ।

सम्मत्त-पुव्वग सम्यक्त्वपूर्वक ।

सम्मत्त-मरणं—सम्यक्त्व सहित मरण ।

सम्मत्त विसुद्धमई-जिसका सम्यग्दर्शन विशुद्ध (शका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टि प्रशंसा और अन्यदृष्टि सस्तव इन पाँच अतिचारों से रहित) है ।

सम्मत्ताहिट्ठियस्स—सम्यग्दर्शन से परिपूर्ण ।

सम्मदंसण—सम्यग्दर्शन ।

जिनेन्द्रदेव के द्वारा उपदिष्ट छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय

और नव पदार्थों को आज्ञा अथवा अधिगम से श्रद्धान करने को **सम्यग्दर्शन** कहते हैं ।

सम्मुच्छिमा—सम्मूर्छन जन्मवाले मनुष्य आदि ।

सयणे—सोने में ।

सयडं--शकट (बैलगाड़ी) ।

सरणपदे—'चत्तारि सरण पव्वज्जामि' इत्यादि शरण पद ।

सरीर परिच्चाओ—कायक्लेश ।

आतापन आदि योग धारण करना कायक्लेश तप है।

सल्लघट्टाण-सल्लघत्ताणं--माया, मिथ्या और निदान इन तीन शल्यों से पीड़ित जीवों की शल्यों का नाश करनेवाला ।

सवीए—बीजयुक्त प्रदेश में ।

सव्वण्हुणा—सर्वज्ञ ।

सव्व-दुक्ख-परिहाणिमग्गं—शारीरिक एवं मानसिक आदि दु खों के नाश का मार्ग है ।

सव्व-पहाणस्स—मोक्ष-प्राप्ति के कारणों में सर्व प्रधान है ।

सव्वलोय-दरसिणा- सर्वदर्शी ।

सव्व-सावज्ज-जोगं- समस्त सावद्य(पाप) योग का ।

सव्वसाहूण (२८ मूलगुणधारी) सम्पूर्ण साधुओं को ।

सव्वेदाणि- सब ये ।

ससमय-परसमयविदू- स्वसमय और परसमय को जानने वाले ।

सहरिए -हरितकाय युक्त भूमि में ।

सहाए—सभा में ।

साइया—स्वादिष्ट ।

साइयं—स्वाद्य (रुचि उत्पादक व्यञ्जन आदि) ।

साइहत्था—अहमिन्द्र ।

सामाइयं—सामायिक ।

सुख-दु.ख, लाभ-अलाभ, सयोग-वियोग, शत्रु-मित्र, जीवन-

मरण, इष्ट-अनिष्ट आदि विषमताओं में राग-द्वेष न करना परंतु साक्षी भाव से उनका ज्ञाता द्रष्टा बने हुए समतास्वभावी आत्मा में स्थित रहना अथवा सर्व सावद्य योग से निवृत्ति सो सामायिक है। श्रावक उस सामायिक को नियत काल पर्यन्त धारकर अभ्यास करता है और साधु का जीवन ही समतामय बन जाता है।

सामाइयपदे—'करेमि भंते सामाइयं' इत्यादि सामायिक पद।

सायार-मंत-भेएण—किसी की इंगित चेष्टा से अभिप्राय समझ कर भेद प्रकट कर देने से।

सावज्जाणुमोयणियाए—हिंसादि का अनुमोदन करनेवाली।

सावयाणं-सावियाणं—श्रावक-श्राविकाओं के।

साहवो- साधु।

सिज्झंति स्वात्मोपलब्धि को प्राप्त करते है।

सिद्ध—आठ कर्मो से रहित तथा आठ गुणों से युक्त सिद्ध परमेष्ठी।

सिद्ध-णिसीहियाओ—सिद्धों की निषिद्धिका अर्थात् निर्वाणक्षेत्र।

सिद्धायदणाणि- सिद्धायतनों अर्थात् सिद्ध प्रतिमा स्थित स्थानों को।

सिद्धि-मग्ग-पज्जव-साहणस्स—सिद्धि अर्थात् सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा या अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति का मार्ग यथाख्यात चारित्र परम प्रकर्ष है।

सिद्धि-मग्गं—सिद्धि का मार्ग है। स्वात्मोपलब्धि का अथवा बुद्धि आदि ऋद्धियो की प्राप्ति का मार्ग है।

सिला-कम्मेसु—पृथक् पड़ी हुई शिलाओं में जो प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं उन्हे शैलकर्म कहते है।

सिवियं—शिविका (पालकी)।

सिस्साणुग्गह—शिष्यों का उपकार करते हैं ।

सुचरिय-परिणिव्वाण-मग्गं—विशुद्ध सामायिक आदि चारित्र की पूर्णता का कारण है । (एक या दो भव में ही मोक्ष का कारण है ।)

सुणिहिदं—सुनिहित ।

सुभमण—शुभ मनवाले अर्थात् आर्त्त-रौद्र ध्यान रहित ।

सुमिण-दंसण-विप्परियासियाए—स्वप्न में किसी स्त्री आदि के देखने का विपर्यास हुआ हो ।

सुमिंणिदियाए—स्वप्न में अपहृत इन्द्रिय की ।

सुसमत्थ—काय-क्लेश के अनुष्ठान में परीषहों को सहन करने में अच्छी तरह से समर्थ ।

सुहाणुबंधेण वा—पूर्व में हुए भोगों का स्मरण करना ।

सेअट्ठे—श्रेष्ठ ।

सेज्ज—शय्या अथवा वसतिका ।

सेढिमग्गं—उपशम और क्षपक श्रेणी का मार्ग है ।

सेवणट्ठे—सेवने योग्य ।

सेविदट्ठे—सेवितार्थ अथवा आश्रयार्थ ।

सोदिंदिय—श्रोत्रेन्द्रिय ।

संदणं—स्यन्दन (रथ) ।

संथार—संस्तर । काष्ठ, तृण आदि का ।

संथारादिचारस्स—संथार आदि मे ।

संथारोवक्कमणेण वा—(प्रमादपूर्वक) बिस्तर आदि बिछाये हों ।

संबुक्क-सिप्पि-पुलविय—जल-शुक्ति या शुक्ति के आकार का जल जन्तु । सीप और पानी में रहने वाली जोक ।

संवाहे—संवाह में ।
दुर्ग-विशेष, जहाँ कृषक लोग धान्य आदि को रक्षा के लिए ले जाकर रखते हैं ।

संसुद्ध—निरतिचार आलोचनादि प्रायश्चित्त से शुद्ध होने के कारण विशुद्ध है ।

संसेदिमा—पसीने में उत्पन्न होने वाले ।

ह

हत्थ-संघट्टणदाए—हाथों का संघर्षण ।

होत्राकुलाः—हवन करते हैं ।

होमनिरताः—होम में निरत हैं ।

हरिआ—सचित्त ।

हरिय चंकमणदाए—हरित वनस्पतिकायिक जीवों पर चलने में ।

हरियभोयणाए—हरित अपक्व पत्र, पुष्प, फल, मूल आदि के सेवन करने में ।

हरिसं—हर्ष ।

हीणाहिय-माणुम्माणेण वा—तौलने के बाँट कमती या बढ़ती रखे हों ।

होऊण सुई—बाह्य शुद्धि एव अभ्यन्तर शुद्धि को धारण कर ।

यथाणोश्च परं नाल्प, नभसो न महत्परम् ।
मन्त्रेशादपरोमन्त्रः, सर्वसिद्धिकरोऽस्ति न ।।

अब्धौ च विषमेऽरण्ये, दावाग्नौ दुर्धरे रणे ।
सर्वत्रापदि सद्‌बन्धुर्मन्त्रोऽयं रक्षकोऽङ्गिनाम् ।।

卐 नमस्कार मंत्र 卐

णमो अरहंताणं

चार घातिया कर्मों से रहित, अनन्त चतुष्टय सहित, आठ प्रातिहार्यो से युक्त, समवसरणादि विभूति से सहित, परम औदारिक शरीर के धारक, वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी अरहंतों को नमस्कार करता हूँ ।

णमो सिद्धाणं

आठ कर्मो से रहित तथा आठ गुणों से युक्त सिद्धों को नमस्कार करता हूँ ।

णमो आइरियाणं

पंचाचार (दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य) का स्वयं पालन करने वाले, दूसरों को पालन कराने वाले तथा छत्तीस गुणों से युक्त आचार्यों को नमस्कार करता हूँ ।

णमो उवज्झायाणं

ग्यारह अङ्गों एवं चौदह पूर्वो का अध्ययन करने व अध्यापन कराने वाले एवं स्वयं शुद्ध व्रतों के धारक उपाध्यायों को नमस्कार करता हूँ ।

णमो लोए सव्वसाहूणं

अट्ठाईस मूलगुणों से मण्डित एवं मोक्षमार्ग की साधना करने वाले लोकवर्ती सम्पूर्ण साधुओं को मैं नमस्कार करता हूँ ।

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं
सिद्धा मंगलं
साहू मंगलं
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म ये चार मंगल रूप हैं अर्थात् पापों का नाश करने वाले तथा सुख देने वाले हैं ।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा
सिद्धा लोगुत्तमा
साहू लोगुत्तमा
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।

अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म—ये चारों लोक में उत्तम हैं अर्थात् उत्तम गुणों से युक्त हैं एवं भव्यों को उत्तम पद की प्राप्ति में कारणभूत हैं ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि
सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
साहू सरणं पव्वज्जामि
केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

अरहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म—इन चारों की शरण को प्राप्त करता हूँ, अर्थात् ये दुर्जेय कर्म-रूपी शत्रुओं से उत्पन्न दु:खरूपी समुद्र से भव्य जीवों को तारने वाले होने से मैं इन चारों की शरण ग्रहण करता हूँ ।

□ □

स्वपन् जाग्रत्तिष्ठन्नथ पथि चलन् वेश्मनि स्खलन्,
भ्रमन् क्लिश्यन् माद्यन् वनगिरि-समुद्रेष्ववतरन् ।
नमस्कारान् पञ्च स्मृतिखनिनिखातानिव सदा,
प्रशस्तौ विन्यस्तन्निव वहति यः सोऽत्र सुकृतिः ।।१।।
ध्यायन्तु हृदये नित्यं, वचसा वा जपन्तु च ।
सर्वावस्थासु सर्वत्र, शिवार्थिनः शिवाप्तये ।।२।।

अर्थ : प्रत्येक प्राणी को शयन से पहले, निद्रात्याग के पश्चात्, किसी स्थान पर निवास करते समय, मार्गगमन के अवसर पर, गृहप्रवेश के समय, इतस्तत भ्रमण के अवसर पर, आमोद-प्रमोद के अवसर पर, वनप्रवेश के समय, पर्वत पर आरोहण एव अवरोहण के समय, समुद्र से पार होने के अवसर पर, इत्यादि अवसरों पर मंत्रराज का जाप अवश्य करना चाहिए ।।१।।

कल्याण के इच्छुक मनुष्य कल्याण की प्राप्ति के लिए निरन्तर सभी अवस्थाओं और सभी स्थानों मे नित्य मंत्र का ध्यान करें और वचन से जाप करें ।।२।।

卐 भेदसंग्रह 卐

(संख्याक्रम से)

दोसु अट्ट-रुद्द संकिलेसपरिणामेसु—आर्त-रौद्र रूप दो प्रकार के संक्लेश परिणामों में ।

तिगुत्तीओ—(१) मनोगुप्ति, (२) वचनगुप्ति, (३) कायगुप्ति ।

(१) **मनोगुप्ति**—राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अशुभ परिणामो के निरोध को मनोगुप्ति कहते है ।

(२) **वचनगुप्ति**—स्त्री सम्बन्धी, चोरी या भोजन सम्बन्धी अर्थात् चार विकथा से एव असत्य भाषरा मे विरत रहना वचनगुप्ति है ।

(३) **कायगुप्ति**—छेदन, भेदन, ताडन, मारण आदि कार्यो से, साक्षात् तथा चित्रादि मे बनी स्त्रियो के स्पर्श आदि से विरत रहना कायगुप्ति है ।

तिण्हं गारवाणं—(१) ऋद्धि गारव (२) शब्द गारव (३) सात गारव ।

(१) **ऋद्धि गारव**—शिष्य, पुस्तक, कमण्डलु, पिच्छी या पट्ट आदि द्वारा अपने को ऊँचा प्रकट करना ऋद्धि गारव है।

(२) **शब्द गारव**—वर्ण के शुद्ध उच्चारण का गर्व करना शब्द गारव है ।

(३) **सात गारव**—भोजन, पान आदि से उत्पन्न सुख की लीला मे मस्त होकर मोह-मद करना सात गारव है ।

तिण्हं दंडाणं—तीन प्रकार के दण्ड ।

जीवो को सताने वाले दुष्ट **मन,** दुष्ट **वचन** और दुष्ट **काय** ये तीन दण्ड कहलाते हैं ।

तिण्हं लेस्साणं--तीन प्रकार की लेश्याओं में।

जीवों को कर्मों से लिप्त करने वाली कृष्ण, नील और कापोत लेश्या रूप प्रवृत्ति तथा पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या रूप अप्रवृत्ति।

तीसु अप्पसत्थ संकिलेस-परिणामेसु--तीन प्रकार के अप्रशस्त (**माया, मिथ्या, निदान,** रूप) संक्लेश (पापोपार्जन में निमित्तभूत) परिणामों में।

चउण्हं सण्णाणं-- चार प्रकार की सज्ञा।

सज्ञा नाम वांछा का है। जिसके निमित्त से दोनों ही भव में दारुण दुःख होता है, उसको सज्ञा कहते है। सज्ञा के चार भेद है—

(१) **आहार संज्ञा**—भोजन की उत्कृष्ट अभिलाषा।

(२) **भय संज्ञा**-- किसी कारण से भयभीत होकर दूसरों की शरण मे जाने की अभिलाषा।

(३) **मैथुन संज्ञा**-- मैथुन कर्म या सुरत-व्यापार की इच्छा होना।

(४) **परिग्रह संज्ञा**-- भोगोपभोग के बाह्य साधनों के सचय की अभिलाषा।

चउसु उवसग्गेसु--चार प्रकार के उपसर्गो में।

(१) देवकृत उपसर्ग मे। (२) मनुष्यकृत उपसर्ग मे। (३) तिर्यचकृत उपसर्ग मे। (४) अचेतनकृत उपसर्ग मे।

चउसु पच्चएसु--चार प्रकार के प्रत्ययों में।

(१) मिथ्यात्व (२) अविरति (३) कषाय (४) योग-- ये चार प्रत्यय कर्मबंध के कारण कहे गये हैं।

(१) **मिथ्यात्व**-- जो सत्य में असत्य की तथा अतत्त्व मे तत्त्व की प्रतीति करावे, उसे मिथ्यात्व कहते है।

(२) **अविरति**--षट्काय के जीवों की रक्षा नही करना और ५ इन्द्रियों एव मन के विषयों मे विरत नही होना १२ अविरति है।

(३) **कषाय**--जो आत्मा को दुःख दे, उसे कषाय कहते है।

(४) **योग**—मन, वचन, काय के निमित्त से होने वाले आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन को योग कहते हैं।

पंचण्हं इंदियाणं—पाँच प्रकार की इन्द्रियाँ।
स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाँचों इन्द्रियों के विषयों का त्याग करना चाहिए।

पंच महव्वदाणि—पाँच महाव्रत।

(१) **अहिंसा महाव्रत**—मन-वचन-काय एव कृत-कारित-अनुमोदना से जीवों का घात न करना अहिंसा महाव्रत है।

(२) **सत्य महाव्रत**—प्रमाद के वशीभूत होकर असत्य भाषण नही करना सत्य महाव्रत है।

(३) **अचौर्य महाव्रत**—बिना दी हुई किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करना अचौर्य महाव्रत है।

(४) **ब्रह्मचर्य महाव्रत**—मन-वचन-काय एव कृत-कारित-अनुमोदना से स्त्री मात्र के सेवन का त्याग करना ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

(५) **अपरिग्रह महाव्रत**—चेतन, अचेतन आदि समस्त परिग्रह का त्याग करना अपरिग्रह महाव्रत है।

पंचमहाकल्लाण—पाँच महाकल्याणक।
(१) गर्भ (२) जन्म (३) तप (४) ज्ञान और (५) मोक्ष। भगवान के ये पाँच महाकल्याणक होते है।

पंच समिदीओ—पाँच समितियाँ।

समिति—निज आत्म-तत्त्व में निर्दोष परिणमन करने के यत्न को समिति कहते है। अथवा गमनादि क्रियाओं मे यत्नाचारपूर्वक आचरण करना समिति है।

(१) **ईर्या समिति**—चार हस्त प्रमाण भूमि को देखकर जीवों की रक्षा करते हुए प्रशस्त प्रयोजन के निमित्त प्रासुक मार्ग से गमनागमन करना ईर्या समिति है।

(२) **भाषा समिति**—चुगली, निन्दा, आत्म-प्रशंसा आदि का परित्याग करके हित, मित और प्रिय वचन बोलना भाषा समिति है।

(३) **एषणा समिति**—छियालीस दोष एवं बत्तीस अन्तराय टालकर सदाचारी उच्चकुलीन श्रावक के घर विधिपूर्वक निर्दोष आहार ग्रहण करना एषणा समिति है।

(४) **आदान-निक्षेपण समिति**—सूक्ष्म जीवों की हिंसा से बचने के लिए शास्त्र, उपकरणों को पिच्छी से झाड़कर सावधानी-पूर्वक उठाना और रखना आदान-निक्षेपण समिति है।

(५) **प्रतिष्ठापन या उत्सर्ग समिति**–निर्जन्तु अर्थात् जीव-रहित स्थान को देखकर मल-मूत्रादि का विसर्जन करना उत्सर्ग समिति है।

पंचसु चरित्तेसु—पाँच प्रकार के चारित्रों में।

चारित्र—रागद्वेषादि भावों से हटकर आत्मस्वरूप में स्थिर होना अथवा अशुभ से निवृत्त होकर शुभ मे प्रवृत्ति करना चारित्र है। चारित्र के पाँच भेद हैं—

(१) **सामायिक**—चेतनाचेतन कृत अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समताभाव रखना अथवा सब व्रतों का अभेद रूप मे पालन करना सामायिक चारित्र है।

(२) **छेदोपस्थापना**—समता या व्रत के भग हो जाने पर फिर से उसमे स्थिर होना अथवा व्रतों का भेद रूप से पालन करना छेदोपस्थापना चारित्र है।

(३) **परिहार-विशुद्धि**—प्राणियो की हिसा के परिहार से विशिष्ट शुद्धि जहाँ हो उसे परिहारविशुद्धि चारित्र कहते है।

(४) **सूक्ष्मसाम्पराय**—कषायो का अभाव करते-करते सूक्ष्म लोभ नाम मात्र को बाकी रह जाय उसे सूक्ष्म सांपराय कहते है तथा उसके नाश करने के प्रयत्न को सूक्ष्म साम्पराय चारित्र कहते है।

(५) **यथाख्यात**—कषायों का सर्वथा अभाव हो जाने पर जो आत्म-स्वभाव का विकास होता है या आत्मस्वरूप की प्राप्ति होती है, उसे यथाख्यात चारित्र कहते है।

पंचेन्द्रियरोध—**स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु** और **श्रोत्र** इन पाँचों इन्द्रियों के मनोज्ञ-अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष का परित्याग करना पचेन्द्रिय-रोध है।

छण्हं आवासयाणं—मुनियों (एवं आर्यिकाओं) के द्वारा अवश्य

करने योग्य कर्त्तव्य को आवश्यक कहते हैं । वे आवश्यक छह है ।

(१) **समता**—रागद्वेषादि समस्त विकार भावों का तथा हिंसा, आरम्भादि समस्त बहिरंग पापकर्मों का त्याग करके जीवन-मरण, हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि में साम्य भाव रखना समता या सामायिक है ।

(२) **स्तव**— चौबीस तीर्थंकर देवों के विषय में की गई स्तुनि स्तव है ।

(३) **वन्दना**—एक तीर्थंकर देव के विषय में की गई स्तुति वन्दना है ।

(४) **प्रतिक्रमण**—भूतकालीन दोषों का निराकरण करना प्रनिक्रमण है।

(५) **प्रत्याख्यान**—भविष्यत् काल मे होनेवाले दोषों या पापो को नहीं करने का नियम प्रत्याख्यान है ।

(६) **कायोत्सर्ग**—काय मे ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है ।

छसु जीवणिकाएसु—छह काय के जीव-समूह में ।

(१) पृथिवीकायिक (२) जलकायिक
(३) अग्निकायिक (४) वायुकायिक
(५) वनस्पतिकायिक (६) त्रसकायिक
(इनकी विराधना नही करनी चाहिए ।)

सत्तण्हं भयाणं—सात प्रकार के भय ।

(१) इहलोकभय (२) परलोकभय
(३) मरणभय (४) वेदनाभय
(५) अगुप्तिभय (६) अरक्षकभय
(७) अकस्मात् भय । इनका त्याग करना चाहिए ।

सत्तविह संसाराणं—सप्तविध संसार ।

(१) एकेन्द्रिय सूक्ष्म (२) एकेन्द्रिय बादर
(३) द्वीन्द्रिय (४) त्रीन्द्रिय
(५) चतुरिन्द्रिय (६) पंचेन्द्रिय सैनी
(७) पचेन्द्रिय असैनी

इनके कारण रूप कर्म तथा इनको पीड़ा पहुँचाने वाला कार्य नही करना चाहिए और अगर करे तो आलोचना करनी चाहिए ।

अट्ठण्हं कम्माणं—आठ प्रकार के कर्म ।

जो आत्मा के वास्तविक स्वभाव को प्रकट न होने दे

उन्हे कर्म कहते है । ये आठ हैं—(१) ज्ञानावरण (२) दर्शनावरण (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र और (८) अन्तराय।

अट्ठण्हं पवयण-माउयाणं—आठ प्रकार की प्रवचन-मातृका।
(१) ईर्या समिति (२) भाषासमिति (३) एषणा समिति (४) आदान-निक्षेपण समिति (५) व्युत्सर्ग समिति (६) मनो-गुप्ति (७) वचनगुप्ति (८) कायगुप्ति।

अट्ठसु मएसु—आठ प्रकार के मदों में।
(१) ज्ञान मद (२) पूजा मद (३) कुल मद (४) जाति मद (५) बल मद (६) ऋद्धि मद (७) तप मद (८) शरीर मद।

अट्ठमहापाडिहेर—आठ महाप्रातिहार्य।
(१) अशोक वृक्ष (२) पुष्प वृष्टि (३) दिव्य-ध्वनि (४) चामर (५) सिंहासन (६) भामण्डल (७) दुन्दुभि और (८) छत्रत्रय।
ये प्रातिहार्य भगवान के केवलज्ञान प्रकट होने पर होते है।

अट्ठसु सुद्धीसु—आठ प्रकार की शुद्धियो में।
(१) मन शुद्धि (२) वचन शुद्धि (३) काय शुद्धि (४) भिक्षा शुद्धि (५) ईर्यापथ शुद्धि (६) उत्सर्ग शुद्धि (७) शयनासन शुद्धि (८) विनय शुद्धि।

णवण्हं णो-कसायाण—नौ प्रकार की नो-कषाय।

(१) **हास्य**—जिससे हंसी आये।

(२) **रति**—जिसमें अनुरक्ति या स्नेह उत्पन्न हो।

(३) **अरति**—जिससे अरुचि या द्वेष उत्पन्न हो।

(४) **शोक**—जिसके कारण शोक का भाव उत्पन्न हो।

(५) **भय**—जिसके कारण भीति उत्पन्न हो।

(६) **जुगुप्सा**—जिसके कारण घृणा उत्पन्न हो।

(७) **स्त्रीवेद**—जिसके कारण पुरुष से सहवास की अभिलाषा उत्पन्न हो।

(८) **पुरुष वेद**—जिसके कारण स्त्री से सहवास करने की इच्छा उत्पन्न हो।

(९) **नपुंसक वेद**— जिसके कारण स्त्री व पुरुष दोनों के सहवास की कामना उत्पन्न हो।

णवसु बंभचेर-गुत्तीसु— नव प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्तियों में।

तीन प्रकार की स्त्री (तिर्यच, मनुष्य और देव) का मन, वचन, काय से एवं कृत, कारित, अनुमोदना से सेवन नही करना, नौ प्रकार का ब्रह्मचर्य है। नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्ति है।

दससु मुंडेसु— दस प्रकार के मुंडन।

(१) स्पर्शन इन्द्रिय निरोध (२) रसना इन्द्रिय निरोध
(३) घ्राण इन्द्रिय निरोध (४) चक्षु इन्द्रिय निरोध
(५) कर्ण इन्द्रिय निरोध (६) हाथ का निरोध
(७) पाँव का निरोध (८) मन का निरोध
(९) वचन का निरोध (१०) शिर का मुंडन

दससु समण-धम्मेसु—दस प्रकार के श्रमण धर्मो में।

(१) **उत्तम क्षमा**—दुष्ट जनो के आक्रोशपूर्ण वचनों को सुनकर क्रोध नही करना उत्तम क्षमा है।

(२) **उत्तम मार्दव**—मान-कषाय का त्याग करना उत्तम मार्दव है।

(३) **उत्तम आर्जव**—मायाचार का त्याग करना उत्तम आर्जव है।

(४) **उत्तम शौच**—लोभ कषाय को छोडना उत्तम शौच है।

(५) **उत्तम सत्य**— असत्य वचन का परित्याग कर शास्त्रानुकूल वचन बोलना उत्तम सत्य है।

(६) **उत्तम संयम** -पंचेन्द्रिय और मन को वश में करना तथा छह काय के जीवो की रक्षा करना उत्तम सयम है।

(७) **उत्तम तप**—समस्त प्रकार के अन्तरग और बहिरंग तपों का पालन करना उत्तम तप है।

(८) **उत्तम त्याग**—संयतो के योग्य ज्ञान आदि चार प्रकार का दान देना अथवा राग-द्वेष का त्याग करना उत्तम त्याग है।

(६) **उत्तम आकिंचन्य**—चौबीस प्रकार के परिग्रह का त्याग करना आकिंचन्य धर्म है।

(१०) **उत्तम ब्रह्मचर्य**—मन, वचन, काय एवं कृत-कारित-अनुमोदना से स्त्री मात्र का त्याग करना उत्तम ब्रह्मचर्य है।

दससु धम्म-ज्झाणेसु—दस प्रकार के धर्म-ध्यानों में।

(१) **अपाय विचय**—ये ससारी प्राणी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र के शिकजे से कैसे छूटे, ऐसा चिन्तन करना।

(२) **उपाय विचय**—दर्शनमोहादि के कारण जीव सम्यग्दर्शनादि से विमुख हो रहे है, ये जीव सन्मार्ग में कैसे लगे, ऐसा चिन्तन करना।

(३) **विपाक विचय**—ज्ञानावरणादि कर्मों के फल का चिन्तन करना।

(४) **विराग विचय**—ससार, शरीर और विषय-भोग ही दुःख के कारण है, ऐसा चिन्तन करना।

(५) **लोक विचय**—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक के भेद से लोक अनादिनिधन है, इस प्रकार आगमानुसार लोक के स्वरूप का विचार करना।

(६) **भव विचय**—नरक-तिर्यचादि गतियो में होने वाले जीवो के भवो का चिन्तन करना।

(७) **जीव विचय**—जीव उपयोगमयी है, अनादि है, मुक्त और ससारी ऐसे दो भेद वाला है, इत्यादि, ससार मे और मोक्ष मे होने वाली जीव की अवस्थाओं का एवं स्वरूप का चिन्तन करना।

(८) **आज्ञा विचय**—जिनेन्द्र की आज्ञा का प्रमाण मानकर "यह इसी प्रकार है" क्योंकि जिन अन्यथावादी नही होते, इस प्रकार गहन पदार्थ के श्रद्धान द्वारा अर्थ-अवधारण करना या चिन्तन करना।

(९) **अजीव विचय**—धर्म, अधर्म, आकाश आदि अजीव द्रव्यों का चिन्तन करना।

(१०) **संसार विचय**—अपने स्वय के द्वारा बांधे हुए कर्मो के विपाक के उदय मे आत्मा ससार मे परिभ्रमण करता हुआ

मरण करके पिता-पुत्र, माता-पत्नी, बहिन-भाभी, दादा-पोता और भाई-पिता हो जाता है। यह संसार दुःखों का पिटारा और अशरणभूत है, इत्यादि चिन्तन करना।

एयारसविहेसु उवासयपडिमासु—ग्यारह प्रकार की उपासकों अर्थात् श्रावकों की प्रतिमाएँ—

(१) **दर्शन प्रतिमा**—२५ दोषों से रहित, सम्यग्दर्शन का धारी, संसार और भोगों से विरक्त, पचपरमेष्ठी का ध्याता और अष्ट मूलगुणों का पालन करने वाला व्यक्ति दर्शन-प्रतिमाधारी कहलाता है।

(२) **व्रत प्रतिमा**—माया, मिथ्यात्व और निदान - इन तीन शल्यों को छोडकर अतिचार रहित पच अणुव्रतों और सात शीलव्रतों का धारक व्रत प्रतिमाधारी कहलाता है।

(३) **सामायिक प्रतिमा**—चारों दिशाओं में तीन-तीन कुल १२ आवर्त और एक-एक शिरोनति कुल ४ प्रमाण कर आभ्यन्तर और बाह्य परिग्रह रहित मुनि के समान खड्गासन या पद्मासन में मन, वचन और काया को शुद्ध रखकर प्रात, दोपहर और सध्या काल मे सामायिक करना सामायिक प्रतिमा है।

(४) **प्रोषध प्रतिमा**—प्रत्येक महीने की दोनों अष्टमियो और दोनों चतुर्दशियो को अपनी शक्ति को न छिपाकर धर्म-ध्यान मे लीन होना एव यथाविधि प्रोषधोपवास करना प्रोषध प्रतिमा है।

(५) **सचित्तत्याग प्रतिमा**—अपक्व जड, फल, शाक, डाली, कोंपल, फूल, बीज इत्यादि के खाने का त्याग करना तथा पानी भी गर्म करके पीना सचित्तत्याग प्रतिमा है।

(६) **रात्रिभुक्तित्याग प्रतिमा**—जीवदया के विचार से रात्रि मे दाल-भात आदि खाद्य, दूध, शर्बत आदि पेय, इलायची, सुपारी, सौफ आदि स्वाद्य तथा रबड़ी, चटनी, अमरस आदि लेह्य इन

चार प्रकार के आहार का त्याग करना रात्रि-भुक्ति-त्याग प्रतिमा है। कुछ आचार्यों ने छठी प्रतिमा को दिवामैथुन-त्याग प्रतिमा भी कहा है।

(७) **ब्रह्मचर्य प्रतिमा**—शरीर को रजोवीर्य से उत्पन्न, अपवित्रता का कारण, नवद्वार का मल-प्रवाहक एवं दुर्गन्ध तथा ग्लानि युक्त जानकर काम-सेवन का सर्वथा त्याग करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है।

(८) **आरम्भत्याग प्रतिमा**—नौकरी, खेती, व्यापार आदि को हिंसा का कारण जानकर उनका त्याग करना आरम्भ-त्याग प्रतिमा है। अभिषेक, पूजा, दान आदि पुण्यार्जन के कार्यों के करने मे कोई बाधा नही है।

(९) **परिग्रहत्याग प्रतिमा**—१० प्रकार के परिग्रहो की ममता छोड़कर सर्वथा निर्मोही एवं मायाममत्व रहित होकर परिग्रहो की आकांक्षा का परित्याग करना परिग्रहत्याग प्रतिमा है।

(१०) **अनुमतित्याग प्रतिमा** खेती आदि आरम्भ, धनादि परिग्रह, विवाहादि लौकिक कार्य -इन कार्यों को करने की अनुमति देने का त्याग करना अनुमतित्याग प्रतिमा है।

(११) **उद्दिष्टत्याग प्रतिमा**—घर छोड़कर मुनि के सान्निध्य मे रहते हुए, व्रतो को धारण करके तप तपते हुए अपने निमित्त से बनाये गये भोजन का परित्याग करके भिक्षावृत्ति मे भोजन करना उद्दिष्ट-त्याग प्रतिमा है। इसके दो भेद है—१ एक लंगोटी और एक खण्डवस्त्र धारी **क्षुल्लक** कहलाता है। २ मात्र लंगोटी को धारण करने वाला **ऐलक** कहलाता है। ऐलक केशलोच करता है तथा हस्तपात्र में भोजन करता है।

बारहविहेसु भिक्खुपडिमासु– बारह प्रकार की भिक्षुप्रतिमाएँ—
उत्तम संहनन वाला मुनि किसी देश में उत्कृष्ट दुर्लभ आहार ग्रहण करने का व्रत ग्रहण करता है।

(१) एक महीने के भीतर-भीतर मुझे ऐसा आहार मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं-ऐसी प्रतिज्ञा करके उस मास के अन्तिम दिन प्रतिमायोग धारण करता है, यह **प्रथम प्रतिमा** हुई।

(२) तत्पश्चात् उक्त आहार से सौगुणा दुर्लभ आहार दो महीने के भीतर-भीतर मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं—ऐसी प्रतिज्ञा करके दोनों मास के अन्तिम दिन प्रतिमायोग धारण करता है, यह **दूसरी प्रतिमा** हुई।

(३-७) इसी प्रकार उत्तरोत्तर उत्कृष्ट (दुर्लभता की अपेक्षा) आहार तीन महीने के भीतर, चार महीने के भीतर, पाँच महीने के भीतर, छह महीने के भीतर और सात महीने के भीतर-भीतर मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, अन्यथा नहीं; ऐसी प्रतिज्ञा करके प्रत्येक महीने के अन्तिम दिन प्रतिमायोग धारण करता है, उनके क्रमशः **तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी** एवं **सातवीं प्रतिमा** हुई।

(८) इसके बाद उत्तरोत्तर उत्कृष्ट आहार तीन दिन के भीतर, फिर सात दिन के भीतर मिलेगा तो ग्रहण करूंगा, नहीं तो नहीं—ऐसा संकल्प करना **आठवीं प्रतिमा** है।

(९-११) इसके बाद किसी भी प्रकार का आहार प्राप्त होने पर क्रम-क्रम से तीन ग्रास लेने का नियम लेना, दो ग्रास लेने का नियम लेना, एक ग्रास लेने का नियम लेना—ये **नौ, दस, ग्यारह प्रतिमा** हुई।

(१२) उसके बाद अहोरात्र प्रतिमायोग से रहता है। रात्रिप्रतिमायोग में स्थित होकर प्रातःकाल केवलज्ञान को प्राप्त करता है।

बारसण्ह अंगाणं—बारह अंग–ये श्रुतज्ञान के अंग ज्ञान रूप भेद है।

(१) **आचारांग**—इसमें यतियों के आचार का वर्णन है। इसके पदों की संख्या १८,००० है।

(२) **सूत्रकृतांग**—दर्शन, ज्ञान, विनय, छेदोपस्थापना आदि क्रियाओं का वर्णन है। इसमें ३६,००० पद है।

(३) **स्थानाङ्ग**—एक, दो, तीन आदि एकाधिक स्थानों में षड्द्रव्यादि का निरूपण है। पद-४२,०००।

(४) **समवायाङ्ग**—इसमें धर्म, अधर्म, लोकाकाश एवं एक जीव असंख्यात-प्रदेशी है, सातवे नरक का मध्य बिल, जम्बूद्वीप, सर्वार्थसिद्धि का विमान, नन्दीश्वर द्वीप की वापी—इन सब का १,००,००० योजन प्रमाण है, इत्यादि वर्णन है। पद-६४,०००।

(५) **व्याख्याप्रज्ञप्ति अङ्ग**- इसमें जीव है या नही-इस प्रकार के गणधर के द्वारा किये गये ६०,००० प्रश्नों का वर्णन है। पद-२,२८,०००।

(६) **ज्ञातृकथांग**—इसमे तीर्थकरो और गणधरो की कथाओं का वर्णन है। पद-५,५०,०००।

(७) **उपासकाध्ययनांग**—इसमें श्रावकों के आचार का वर्णन है। पद-११,७०,०००।

(८) **अन्तःकृतदशांग**—प्रत्येक तीर्थकर के समय मे दस-दस मुनि होते है, जो उपसर्गों को सहन कर मोक्ष प्राप्त करते है। इसमे उन मुनियों की कथाओं का वर्णन है। पद-२३,२८,०००।

(९) **अनुत्तरौपपादिकदशांग**- प्रत्येक तीर्थकर के समय में दस-दस मुनि होते हैं, जो उपसर्गो को सहन कर पांच अनुत्तर विमानों मे उत्पन्न होते है। इसमे उन मुनियों की कथाओं का वर्णन है। पद-९२,४४,०००।

(१०) **प्रश्नव्याकरणांग**—इसमे प्रश्नो के अनुसार नष्ट, मुष्टिगत आदि का उत्तर है। पद-९३,१६,०००।

(११) **विपाकसूत्रांग**—इसमें कर्मो के उदय, उदीरणा और सत्ता का वर्णन है। पद-१,८४,००,०००।

(१२) **दृष्टिवादांग**—दृष्टिवाद अग के ५ भेद है—

(१) परिकर्म (२) सूत्र (३) प्रथमानुयोग
(४) पूर्व (५) चूलिका।

(१) **परिकर्म** के ५ भेद हैं—

(क) **चन्द्र प्रज्ञप्ति**—में ३६,०५,००० पदो के द्वारा चन्द्रमा की आयु, परिवार, ऋद्धि, गति और बिम्ब की ऊँचाई आदि का वर्णन है।

(ख) **सूर्य प्रज्ञप्ति**—में ५,०३,००० पदों के द्वारा सूर्य की आयु, भोग, उपभोग, परिवार, ऋद्धि, गति, बिम्ब की ऊँचाई, दिन की हानि-वृद्धि, किरणों का प्रकाश एवं प्रमाण आदि का वर्णन है।

(ग) **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति**—में ३,२५,०००पदों के द्वारा जम्बूद्वीपस्थ भोग-भूमि और कर्मभूमि मे उत्पन्न हुए नाना प्रकार के मनुष्य तथा दूसरे तिर्यंच आदि का और पर्वत, द्रह, नदी, वेदिका, अकृत्रिम चैत्यालय आदि का वर्णन है।

(घ) **द्वीपसागर प्रज्ञप्ति**—मे ५२,३६,००० पदो के द्वारा उद्धार पल्य से द्वीप और समुद्रो के प्रमाण का तथा द्वीप-सागर के अन्तर्गत नाना प्रकार के दूसरे पदार्थो का वर्णन है।

(ङ) **व्याख्या प्रज्ञप्ति**—में ८४,३६,००० पदो के द्वारा रूपी पुद्गल द्रव्य, अरूपी अजीव द्रव्य (धर्म, अधर्म, आकाश और काल), भव्यसिद्ध और अभव्यसिद्ध इन सबका वर्णन है।

(२) **सूत्र**—८८,००,००० पदों के द्वारा जीव अबन्धक ही है, अलेपक ही है, अकर्ता ही है, अभोक्ता ही है, जीव अस्तिस्वरूप ही है, जीव नास्तिस्वरूप ही है, नित्य ही है, अनित्य ही है, इत्यादि रूप से ३६३ मतो का पूर्व पक्ष मे वर्णन करता है एवं अंतिम अधिकार स्वसमय का प्ररूपक है।

(३) **प्रथमानुयोग**—५,००० पदो के द्वारा १२ प्रकार के तीर्थकर, चक्रवर्ती, विद्याधर, नारायण, प्रतिनारायण, चारण,

प्रज्ञाश्रमण के वंशों का, कुरुवंश, हरिवंश, इक्ष्वाकुवंश, काश्यपवंश, वादियो का वंश और नाथवंश का वर्णन अर्थात् पुराणों का वर्णन करता है।

(४) **पूर्व**—१४ भेद निम्नलिखित प्रकार हैं—

(१) **उत्पादपूर्व**—इसमें वस्तु के उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का वर्णन है। पद—१,००,००,०००।

(२) **अग्रायणी पूर्व**—इसमें अङ्गों के प्रधानभूत सात सौ सुनय, दुर्नय, पंचास्तिकाय, षड्द्रव्य, सप्ततत्त्व आदि का वर्णन है। पद—९६,००,०००।

(३) **वीर्यानुप्रवाद पूर्व**—इसमें बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, इन्द्र, तीर्थकर आदि के बल का तथा आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, कालवीर्य, तपोवीर्य, द्रव्यवीर्य, गणवीर्य आदि का वर्णन है। पद—७०,००,०००।

(४) **अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व**—इसमे जीवादि वस्तुओं के अस्तित्व और नास्तित्व का वर्णन है। पद—६०,००,०००।

(५) **ज्ञानप्रवाद पूर्व**—इसमे ८ ज्ञान, उनकी उत्पत्ति के कारण एव ज्ञानों के स्वामी का वर्णन है। पद—१ कम १,००,००,०००।

(६) **सत्यप्रवाद पूर्व**—इसमे वर्ण, स्थान, दो इन्द्रिय आदि प्राणी और वचन गुप्ति के संस्कार का वर्णन है। पद—१,००,००,००६।

(७) **आत्मप्रवाद पूर्व**—इसमे आत्मा के स्वरूप का वर्णन है। पद—२६,००,००,०००।

(८) **कर्मप्रवाद पूर्व**—इसमे कर्मों के बन्ध, उदय, उपशम और उदीरणा का वर्णन है। पद—१,८०,००,०००।

(९) **प्रत्याख्यान पूर्व**—इसमे द्रव्य और पर्याय के प्रत्याख्यान का वर्णन है। पद—८४,००,०००।

(१०) **विद्यानुप्रवाद पूर्व**—इसमें ५०० महाविद्याओं, ७०० क्षुद्रविद्याओं और अष्टांग महानिमित्तों का वर्णन है। पद—१,१०,००,०००।

(११) **कल्याणप्रवाद पूर्व**—इसमे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, वासुदेव, इन्द्र आदि का वर्णन है। पद—२६,००,००,०००।

(१२) **प्राणावाय पूर्व**—इसमें अष्टांग, वैद्य-विद्या, गारुड-विद्या और तन्त्र-मन्त्र आदि का वर्णन है। पद—१३,००,००,०००।

(१३) **क्रियाविशाल पूर्व**—इसमें छन्द, अलङ्कार और व्याकरण आदि का वर्णन है। पद—९,००,००,०००।

(१४) **लोकबिन्दुसार पूर्व**—इसमे निर्वाण के सुख का वर्णन है। पद—१२,५०,००,०००।

(५) चूलिकाके ५ भेद हैं—

(१) **जलगता**—२,०९,८९,२०० पदों के द्वारा जल में गमन और जल - स्तम्भन के कारणभूत मन्त्र-तन्त्र और तपश्चर्या रूप अतिशय आदि का वर्णन करती है।

(२) **स्थलगता**—२,०९,८९,२०० पदो के द्वारा पृथ्वी के भीतर गमन करने के कारणभूत मन्त्र-तन्त्र और तपश्चरण रूप आश्चर्य आदि का तथा वास्तुविद्या और भूमि संबधी दूसरे शुभ-अशुभ कारणों का वर्णन करती है।

(३) **मायागता**—२,०९,८९,२०० पदो के द्वारा इन्द्रजाल आदि के कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरण का वर्णन करती है।

(४) **रूपगता**—२,०९,८९,२०० पदों के द्वारा सिंह, घोडा और हरिणादि के स्वरूप के आकार रूप से परिणमन करने के कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरण का

तथा चित्र कर्म, काष्ठ कर्म, लेप्यकर्म आदि के लक्षण का वर्णन करती है।

(५) **आकाशगता**—२,०६,८६,२०० पदों के द्वारा आकाश में गमन करने के कारणभूत मन्त्र, तन्त्र और तपश्चरण का वर्णन करती है।

बारसण्हं तवाणं—बारह प्रकार के तप।

अभ्यन्तर तप के छह भेद—

(१) **प्रायश्चित्त**—व्रतों में लगे हुए दोषों की शुद्धि करने के लिए दण्ड लेना प्रायश्चित्त तप है।

(२) **विनय**—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं पूज्य पुरुषों का आदर करना, उनके आने पर उठकर खड़ा होना, उनके सामने जाना, चलते समय उनके पीछे चलना, हाथ जोड़कर नमस्कार करना विनय है।

(३) **वैयावृत्ति**—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, साधु, मनोज्ञ, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल और संघ—इन दस प्रकार के साधुओं पर उपसर्ग आदि आने पर काय की चेष्टा से या किसी द्रव्यान्तर से उपसर्ग को दूर करना, व्याधि-ग्रस्त होने पर प्रासुक औषधि आदि देना, उनके ठहरने के लिए स्थान आदि का प्रबन्ध करना, ज्ञान-संयम-शौचादि के उपकरण देना, मिथ्यात्वादि की उत्पत्ति या संयम से च्युत होने पर उन्हें फिर से सम्यक्त्व और संयम में स्थापित करना, उनके मुख से कफ आदि निकालना, उनके अनुकूल आचरण करना वैयावृत्ति तप है।

(४) **स्वाध्याय**—परम संवेग एवं तप की वृद्धि के लिए तथा अतिचारों की शुद्धि के लिए निर्मल चारित्र के पालन के लिए स्व-पर का विवेक प्राप्त करने के लिए

(क) **वाचना** (अक्षर व अर्थ शुद्ध पढ़ना व समझना)।

(ख) **पृच्छना** (संशय दूर करने के लिए या जाने हुए को दृढ़ करने के लिए गुरुओं को पूछना)।

(ग) **अनुप्रेक्षा** (अधिगत अर्थ का मन से अभ्यास करना)।

(घ) **आम्नाय** (अधिगत वस्तु को वचन से जोर-जोर से बोलना)।

(ङ) **धर्मोपदेश** (धर्म-कथादि का अनुष्ठान करना)। रूप पंचविध स्वाध्याय करना तथा जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित शास्त्रों को पढ़ना स्वाध्याय तप है।

(५) **व्युत्सर्ग**—धन-धान्यादि बाह्य उपाधि का तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अन्तरंग उपाधि का त्याग करना व्युत्सर्ग तप है।

(६) **ध्यान**—धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान की भावना ध्यान तप है।

बहिरंग तप के छह भेद—

(१) **अनशन**—खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय—इन चारो प्रकार के आहार का त्याग करना अनशन तप है।

(२) **अवमौदर्य**—भूख से कम खाना अवमौदर्य तप है।

(३) **व्रतपरिसंख्यान**—आहार को जाते समय घर, गली आदि का नियम लेना व्रतपरिसंख्यान तप है।

(४) **रस-परित्याग**—दूध, दही, घी, नमक, तेल, मधुर (चीनी, गुड़ आदि) इन छह रसों मे से एक या एकाधिक रस का अपनी शक्ति के अनुसार त्याग करना रसपरित्याग तप है।

(५) **विविक्तशय्यासन**—ब्रह्मचर्य की रक्षा तथा स्वाध्याय की वृद्धि के लिए एकान्त स्थान में सोना व बैठना विविक्तशय्यासन तप है।

(६) **कायक्लेश**—आतापन आदि योग धारण करना कायक्लेश तप है।

बारसेसु संजमेसु—बारह प्रकार के संयमों में।

६ प्रकार का इन्द्रिय संयम (मन और इन्द्रियों को वश में करना) और ६ प्रकार का प्राणी संयम

(षट्काय के जीवों की विराधना नहीं करना) ये १२ प्रकार के सयम है।
(१) स्पर्शन (२) रसना (३) घ्राण (४) चक्षु (५) कर्ण (६) मन (७) पृथिवीकायिक (८) जलकायिक (९) अग्निकायिक (१०) वायुकायिक (११) वनस्पतिकायिक (१२) त्रसकायिक जीव।

तेरसविहेसु किरियाट्ठाणेसु—तेरह प्रकार की क्रियाओं में।

छह आवश्यक, पंच नमस्कार मंत्र, निस्सहि और **अस्सहि** का उच्चारण करना। ये १३ प्रकार की क्रियाएँ हैं। मन्दिर में, सूने मकान आदि में प्रवेश करते समय, मल-मूत्र विसर्जन करते समय 'निस्सहि निस्सहि निस्सहि' उच्चारण करना और मन्दिर आदि मे निकलते समय 'अस्सहि अस्सहि अस्सहि' का उच्चारण करना चाहिए।

चउदसविहेसु भूदगामेसु—१४ प्रकार के भूतग्राम।

एकेन्द्रिय बादर-सूक्ष्म दो प्रकार के, **दो** इन्द्रिय **तीन** इन्द्रिय, **चार** इन्द्रिय, **पंचेन्द्रिय सैनी** और **असैनी** ये ७ इनको **पर्याप्त** और **अपर्याप्त** मे गुणा करने पर १४ प्रकार के भूतग्राम होते है अथवा—मिथ्यात्व, सासादनादि चौदह गुणस्थानो को भी १४ भूतग्राम कहते है।

पण्णरसविहेसु पमायठाणेसु—१५ प्रकार के प्रमाद स्थान।

४ कषाय, ४ विकथा, ५ इन्द्रियाभिलाषा **स्नेह** और **निद्रा**—ये १५ प्रमाद-स्थान है।

सोलसण्हं कसायाणं—१६ प्रकार की कषाय।

(१) अनन्तानुबन्धी क्रोध (२) अनन्तानुबन्धी मान
(३) अनन्तानुबन्धी माया (४) अनन्तानुबन्धी लोभ
(५) अप्रत्याख्यान क्रोध (६) अप्रत्याख्यान मान
(७) अप्रत्याख्यान माया (८) अप्रत्याख्यान लोभ
(९) प्रत्याख्यान क्रोध (१०) प्रत्याख्यान मान
(११) प्रत्याख्यान माया (१२) प्रत्याख्यान लोभ
(१३) संज्वलन क्रोध (१४) संज्वलन मान
(१५) संज्वलन माया (१६) संज्वलन लोभ

सोलहविहेसु पवयणेसु—१६ प्रकार के प्रवचन में।

तीन प्रकार की विभक्ति—(१) एकवचन (२) द्विवचन (३) बहुवचन।
तीन प्रकार के काल—(४) भूतकाल (५) वर्तमानकाल (६) भविष्यत्काल।
तीन प्रकार के लिग—(७) पुंलिग (८) स्त्रीलिंग (९) नपुं०लिग

(१०) हीन (कम) (११) अधिक, तथा (१२) मिश्र (हीनाधिक) तीन प्रकार के वचन। (१३) शास्त्रिक वचन (१४) लौकिक वचन (१५) प्रत्यक्ष वचन और (१६) परोक्ष वचन - ये १६ प्रकार के प्रवचन है।

सत्तारसविहेसु असंजमेसु—१७ प्रकार के असयम भाव।

(१) पृथ्वीकाय (२) जलकाय (३) वायुकाय (४) अग्निकाय (५) वनस्पतिकाय (६) दो इन्द्रिय (७) तीन इन्द्रिय (८) चार इन्द्रिय (९) पंचेन्द्रिय-इन ९ प्रकार के जीवो की विराधना करना (१०) पीछे से प्रतिलेखन करना (११) दुष्परिणामों से प्रतिलेखन करना (१२) जीवों को उठाकर दूसरी जगह रखना-यह अपहृत असंयम है। (१३) जिन जीवों को उठाकर दूसरी जगह डाला हो उनका फिर से अवलोकन नही करना-यह उपेक्षा असयम है।
(१४) मन का विरोध नहीं करना।
(१५) वचन का विरोध नही करना।

(१६) काय का विरोध नहीं करना और
(१७) अजीव तृण, काष्ठादि को नख आदि से छेदना-यह अजीव असंयम है।

णिस्सिहीए– १७ प्रकार के निषिद्धिका स्थान ।

(१) अरिहंतों और सिद्धों के कृत्रिम, अकृत्रिम प्रतिबिम्ब ।
(२) जिन चैत्यालय और जिन मन्दिर।
(३) जिनागम ।
(४) जिनागम उत्पत्ति क्षेत्र (जहाँ-जहाँ दिव्यध्वनि खिरी है) ।
(५) सम्यक्त्व गुण युक्त तपस्वी ।
(६) उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र ।
(७) बुद्धि और ऋद्धि आदि सम्पन्न मुनि ।
(८) बुद्धि-ऋद्धि उत्पत्ति-क्षेत्र ।
(९) उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र । (जहाँ-जहाँ विहार किया है और वर्तमान में स्थित है ।)
(१०) अवधि, मन:पर्यय एवं केवलज्ञानी ।
(११) ज्ञानोत्पत्ति क्षेत्र ।
(१२) उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र ।
(१३) (आतापन आदि) योगस्थित तपस्वी ।
(१४) उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र ।
(१५) तीन प्रकार के पण्डितमरण के स्वामी ।
(१६) उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र ।
(१७) निर्वाण क्षेत्र ।

अट्ठारसविहेसु असंपराइएसु - १८ प्रकार के असाम्परायिक में । पुण्य के आगमन के कारणभूत सम्पराय के भाव को **साम्परायिक** कहते है और साम्परायिक का नहीं होना **असाम्परायिक** है ।

उत्तम क्षमादि **दस** धर्म, आठ प्रवचनमातृका (५ समिति + ३ गुप्ति) ये १८ साम्परायिक गुण है। इनका पालन नहीं करना १८ असाम्परायिक है।

उणवीसाए णाहज्झयणेसु—१६ प्रकार के नाथाध्ययन।

(१) उक्कोडणाग (२) कुम्म (३) अण्डय (४) रोहिणी (५) शिष्य (६) तुंब (७) संघादि (८) मातंगमल्लि (९) चन्द्रिभ (१०) तावदेवय (११) तिका (१२) तलाय (१३) किण्णे (१४) सुसुकेय (१५) अंवरंक (१६) णंदिफल (१७) उदगणाह (१८) मण्डुक (१९) पुष्करिणी—ये १९ कथाएँ नाथाध्ययन हैं।

ये सब सम्यक् धर्मकथायें हैं—

(१) **उक्कोडणाग**—श्वेतहस्ती नागकुमार की कथा।

(२) **कुम्म**—कूर्मकथा।

(३) **अंडय**—अण्डज कथा (१. कुक्कुट कथा २. तापसपल्लिका म्थित शुककथा ३. वेदकशुककथा ४. अगंधन सर्पकथा ५. हंसयूथ-बन्धनमोचक कथा)

(४) **रोहिणीकथा।**

(५) **शिष्यकथा।**

(६) **तुंब**—क्रोध मे दिये हुए कटु तुम्बी के भोजन करने वाले मुनि की कथा।

(७) **संघादि**—समुद्रदत्तादि ३२ श्रेष्ठ पुत्रों की कथा जो सभी अनिवृष्टि के होने पर समाधि को धारणकर स्वर्ग को प्राप्त हुए।

(८) **मातंगमल्लि**—मातंगमल्लि कथा।

(९) **चन्द्रिभ**—चन्द्रवेधकथा।

(१०) **तावदेवय**—सगरचक्रवर्ती की कथा।

(११) **तिका**—करकण्डू राजा की कथा।

(१२) **तलाय**—वृक्ष के एक कोटर में बैठे हुए तपस्वी की कथा।

(१३) **किण्णे**—चावलों के मर्दन में स्थित पुरुष की कथा।

(१४) **सुसुकेय**—आराधना ग्रन्थ में कही हुई शुंशुमार सरोवर सम्बन्धी कथा।

(१५) **अंबरंक**—अंबरंक नामक पत्तनपुर में उत्पन्न होने वाले अंजन चोर की कथा।

(१६) **णंदिफल**—अटवी में स्थित, बुभुक्षा से पीडित, धन्वंतरि, विश्वानुलोम और भृत्य के द्वारा लाये हुए किपाकफल की कथा।

(१७) **उदगणाह**—उदकनाथ कथा।

(१८) **मंडूककथा**—जातिस्मरण होने वाले मेढक की कथा।

(१९) **पुष्करिणी**—पुंडरीक नामक राजपुत्री की कथा।

अथवा

(१) गुणस्थान (२) जीवसमास (३) पर्याप्ति (४) प्राण (५) संज्ञा और १४ मार्गणा ये १९ प्रकार के नाथाध्ययन है।

अथवा

९ केवललब्धि और १० केवलज्ञान के अतिशय, ये १९ प्रकार के नाथाध्ययन है।

वीसाए असमाहिट्ठाणेसु—बीस असमाधि-स्थानों में।

रत्नत्रय की आराधना मे विक्षिप्त चित्त का रखना असमाधि है।

(१) **डवडवचरं**—ईर्या समिति से रहित चलना।

(२) **अप्पमज्जियं**—बिना देखे शौचादि उपकरणों को रखना या उठाना।

(३) **रादोणीयपडिहासी**—अपने से एक रात्रि भी दीक्षा में बड़ा है उसके बीच मे बोलना अथवा उसका तिरस्कार करना।

(४) **अधिसेज्जाणं**—अपने से जो दीक्षा मे बड़े है उनके अथवा गुरु के मस्तक पर सोना।

(५) **कोही**—गुरु के वचनों पर क्रोध करना।

(६) **थेरविवादं तराए**—जहां अपने से बड़े गुरु आदि बोल रहे हों वहां बीच मे बोलना।

(७) **उवघाइं**—दूसरों का तिरस्कार करके बोलना।

(८) **अणणुवीचि**—वीतराग प्रणीत शास्त्र के विरुद्ध बोलना।

(९) **अधिकरणी**—स्वबुद्धि से आगमविरुद्ध तत्त्व का कथन करना।

(१०) **पिट्ठीमास पडिणीगो**—पीठ का मांस खाना अर्थात् पीठ पीछे किसी की चुगली करना।

(११) **असमाहिकलहं**—एक की बात दूसरे को कहकर झगड़ा पैदा करा देना।

(१२) **झंझा**—थोड़ी-थोड़ी कलह करके रोप करना।

(१३) **सद्दकरेपढिदा**—सब की ध्वनि का तिरस्कार करके स्वय बडे जोर-जोर से पढ़ना जिससे दूसरे अपना पाठ भूल जाँय।

(१४) **एषणासमिति**—एषणासमिति रहित आहार करना।

(१५) **सूरधमाणभोजी**—जिस भोजन से प्रमाद आवे ऐसे गरिष्ठ भोजन का सेवन करना।

(१६) **गणांगणिगो**—प्रचुर अपराध करने वाला अर्थात् एक गण से दूसरे गण मे निकाल देने वाला अपराध करना।

(१७) **सरक्खरावदे**—धूलि से भरे हुए पैरों से जल में प्रवेश करना और गीले पैरो से धूलि में प्रवेश करना।

(१८) **अप्पमाणभोजी**—अप्रमाण भोजन करना अर्थात् भूख से ज्यादा खाना।

(१९) **अकालसज्झाओ**—अकाल मे स्वाध्याय करना।

ये बीस असमाधि स्थान है। इनका सर्वथा त्याग करना चाहिए। प्रमाद वा अज्ञान से इनका सेवन करने पर प्रतिक्रमण करना चाहिए।

एक्कवीसाए सवलेसु—**पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श** तथा परिवार के लोगों को छोड़ दिया है उन पर **स्नेह** करना—ये २१ सवल हैं।

बावीसाए परीसहेसु– बाईस परीषहों में ।

(१) **क्षुधा**—जो मुनि निर्दोष आहार न मिलने पर या अल्पाहार मिलने पर अकाल और अयोग्य देश मे आहार ग्रहण नही करते, क्षुधा की वेदना होने पर क्षुधा की चिन्ता नही करते और भिक्षा के लाभ की अपेक्षा अलाभ मे लाभ मानते है, उनके **क्षुधापरीषहजय** होती है ।

(२) **तृषा**—जो मुनि नदी, वापी, तडाग आदि के जल मे स्नान के त्यागी होते है, उपवास तथा गर्मी आदि के कारण तीव्र प्यास लगने पर भी उसका प्रतिकार नही करते, परन्तु प्यास को सन्तोष-रूपी जल से शान्त करते हैं उनके **तृषा परीषहजय** होती है ।

(३) **शीत**—जो मुनि शीतकालीन ठण्डी वायु या हिम की असह्य ठण्डक को शान्तिपूर्वक सहन करते है तथा शीत का प्रतिकार करने के लिए वस्त्र, अग्नि आदि का स्मरण भी नही करते उनके **शीतपरीषहजय** होती है ।

(४) **उष्ण**– ग्रीष्मकाल की प्रचण्ड गर्म वायु या लू से जिन मुनि का शरीर झुलस रहा है, कण्ठ सूख रहा है और पित्त के द्वारा जिनके अतरग मे दाह उत्पन्न हो रही है, फिर भी जो गर्मी से बचने का विचार भी नही करते है, परन्तु गर्मी की वेदना को शान्तिपूर्वक सहन करते है, उनके **उष्णपरीषहजय** होती है ।

(५) **दंशमशक** जो डांस, मच्छर, चीटी, मक्खी, बिच्छू आदि के काटने से उत्पन्न वेदना को शान्तिपूर्वक सहन करते है, उनके **दंशमशकपरीषहजय** होती है ।

(६) **नाग्न्य**—जो मुनि नग्नता के प्रति अपने मन में किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नही होने देते उनके **नाग्न्य परीषहजय** होती है ।

(७) **अरति**—जो मुनि इन्द्रियों के विषयो से विरत होते हैं, संगीत आदि से रहित शून्य गृहादि में निवास करते है,

स्वाध्याय आदि में ही रत रहते हैं, उनके **अरति परीषहजय** होती है।

(८) **स्त्री**—स्त्रियों के भ्रू-विलास, नेत्र-कटाक्ष, शृंगार आदि के द्वारा जिन मुनि के मन में किसी भी प्रकार का विकार उत्पन्न नही होता तथा जो कछुए के समान इन्द्रियों और मन का सयमन करते है, उनके **स्त्री परीषहजय** होती है।

(९) **चर्या**—गुरुजन की आज्ञा से तथा देश-काल के अनुसार गमनागमन करते समय कंकड़ कांटे आदि के द्वारा उत्पन्न बाधा को शान्तिपूर्वक सहन करना तथा पूर्वावस्था में भोगे हुए वाहनादि का स्मरण नही करना **चर्या परीषहजय** है।

(१०) **निषद्या**—जो मुनि श्मशान, वन, पर्वत-कन्दरा आदि मे निवास करते है और नियत कालपर्यन्त ध्यान के लिए निषद्या (आसन) को स्वीकार करते है, लेकिन उपसर्ग आने पर भी जो अपने आसन से च्युत नही होते है और न मन्त्रादि के द्वारा ही किसी प्रकार का प्रतिकार करते है, उनके **निषद्या परीषहजय** होती है।

(११) **शय्या**—जो मुनि ऊँची-नीची, ककड़, बालू आदि से युक्त कठोर भूमि पर एक करवट से लकडी या पत्थर के समान निश्चल सोते है, उनके **शय्या परीषहजय** होती है।

(१२) **आक्रोश**—दुष्ट व अज्ञानी जनो के द्वारा कहे गये कठोर व असभ्य वचनो को सुनकर हृदय में किंचित् मात्र भी कषाय नही करते है तथा प्रतिकार करने का विचार भी नही करते है, उनके **आक्रोश परीषहजय** होती है।

(१३) **वध**—तीक्ष्ण शस्त्रास्त्रों के द्वारा शरीर पर प्रहार किये जाने पर भी जो मुनि प्रहार करने वालो से द्वेष नही करते हैं, उनके **वध परीषहजय** होती है।

(१४) **याचना**—तप के द्वारा शरीर के सूखकर अस्थिपंजर बन जाने पर भी जो मुनि दीनवचन, मुखवैवर्ण्य आदि द्वारा भोजनादि पदार्थो की याचना नही करते हैं, उनके **याचना परीषहजय** होती है।

(१५) **अलाभ**—अनेक दिनों तक आहार नहीं मिलने पर भी जो मुनि अपने मन में किसी प्रकार का खेद नही करते और भिक्षा के लाभ की अपेक्षा अलाभ को ही तप का हेतु समझते है, उनके **अलाभ परीषहजय** होती है।

(१६) **रोग**—शरीर में अनेक रोगों के उत्पन्न हो जाने पर भी जो रचमात्र भी व्याकुल नही होते है एवं रोग का प्रतिकार भी नही करते है, उनके **रोग परीषहजय** होती है।

(१७) **तृणस्पर्श**- जो मुनि चलते समय तृण, कॉटे आदि के चुभन से उत्पन्न कष्ट को शान्तिपूर्वक सहन कर लेते है, उनके **तृणस्पर्श परीषहजय** होती है।

(१८) **मल**—जो मुनि जलकायिक जीवों की हिंसा से बचने के लिए स्नान नही करते तथा शरीर मे पसीना आने से धूलि आदि जम जाने पर भी तथा खुजली आदि रोगों के हो जाने पर भी अपने शरीर को नही खुजलाते है तथा शरीर के मैल को देखकर रचमात्र भी क्षुब्ध नही होते है, उनके **मल परीषहजय** होती है।

(१९) **सत्कार-पुरस्कार** अपने मे गुणों की अधिकता होने पर भी यदि कोई आदर-सत्कार न करे तो भी चित्त मे कलुषता नही करते है, उनके **सत्कार-पुरस्कार परीषहजय** होती है।

(२०) **प्रज्ञा**- तर्क, व्याकरण, साहित्य, छन्द, अलंकार, अध्यात्म-शास्त्र आदि विद्याओं मे निपुण होने पर भी जो मुनि अपने ज्ञान का मद नही करते है, उनके **प्रज्ञा परीषहजय** होती है।

(२१) **अज्ञान**—सकल शास्त्रों में निपुण होने पर भी दूसरों के द्वारा किये गये 'यह महामूर्ख है' आदि आक्षेपों को सुनकर जो मुनि शान्त भाव धारण किये रहते है उनके **अज्ञान परीषहजय** होती है।

(२२) **अदर्शन**—चिरकाल तक तपश्चर्या करने पर भी अवधिज्ञान या ऋद्धि आदि की प्राप्ति नही होने पर जो मुनि "यह दीक्षा निष्फल है, व्रतों का धारण करना व्यर्थ है" इस तरह विचार नही करते है, उनके **अदर्शन परीषहजय** होता है।

तेवीसाए सुद्दयडज्झाणेसु—२३ प्रकार के सूत्रकृताध्ययन—

(१) **समयाधिकार**—जिसमें स्वाध्याय के योग्य तीन काल का प्रतिपादन किया हो।

(२) **वेदलिंगाधिकार**—जिसमे तीन लिगो (स्त्री, पुरुष और नपुंसक) का वर्णन हो।

(३) **उपसर्गाधिकार**—जिसमे देव, मनुष्य, तिर्यंच और अचेतन कृत उपसर्गो का और उपसर्ग सहने वालों का वर्णन हो।

(४) **स्त्रीपरिणामाधिकार**—जिसमें स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन हो।

(५) **नरकान्तराधिकार**—जिसमे नरकादि चार गति के जीवों की आयु, अवगाहना, गमनागमन, लेश्या आदि का वर्णन हो।

(६) **वीरस्तुत्यधिकार**—जिसमे चौबीस तीर्थकरो के गुणों का वर्णन हो।

(७) **कुशीलपरिभाषाधिकार**—जिसमे कुशीलादि पॉच पार्श्वस्थ मुनियों के आचरण व रूप का वर्णन हो।

(८) **वीर्याधिकार**—जिसमें जीवों की शक्ति के तारतम्य का वर्णन हो।

(९) **धर्माधिकार**—जिसमें धर्म और अधर्म के स्वरूप का वर्णन हो।

(१०) **अग्राधिकार**—जिसमे श्रुत के अग्रपदों का वर्णन हो।

(११) **मार्गाधिकार**—जिसमे मोक्ष और स्वर्ग के कारणों का वर्णन हो।

(१२) **समवसरणाधिकार**—जिसमें चौबीस तीर्थकरों के समवसरण का वर्णन हो।

(१३) **त्रिकालग्रन्थाधिकार**—तीनों ही कालो मे परिग्रह अशुभ है, अतः आत्मकल्याण चाहने वाले प्राणियों को परिग्रह ग्रहण नही करना चाहिए जिसमे ऐसा वर्णन हो।

(१४) **आत्माधिकार**—जिसमें जीव के स्वरूप का वर्णन हो।

(१५) **तदित्थगाथाधिकार**—जिसमे विधर्मियों के साथ विवाद किस प्रकार किया जाय तथा छह निग्रह आदि वाद का वर्णन हो।

(१६) **पुण्डरीकाधिकार**—जिसमे स्वर्गादिक स्थानों मे स्त्रियों की आयु आदि का वर्णन हो।

(१७) **क्रियास्थानाधिकार**—जिसमें पच नमस्कार, षडावश्यक और दो "निस्सहि", "अस्सहि"—इन त्रयोदश क्रियाओं का वर्णन हो।

(१८) **आहारकपरिणामाधिकार**—जिसमे सर्व धान्यों के रस-वीर्य-विपाक का तथा शरीरगत सात धातुओं के स्वरूप का वर्णन हो।

(१९) **प्रत्याख्यानाधिकार**—जिसमे सर्व द्रव्यों के विषयों से निवृत्ति का अर्थात् विषय-भोगों के त्याग का वर्णन हो।

(२०) **अनगारगुणकीर्तनाधिकार**—जिसमें मुनियो के गुणो का वर्णन हो।

(२१) **श्रुताधिकार**—जिसमे श्रुत के माहात्म्य का वर्णन हो।

(२२) **अर्थाधिकार**—जिसमे श्रुत के फल का वर्णन हो।

(२३) **बालनन्दाधिकार**—जिसमें ज्योतिष देवों के परे लोक की ऊँचाई आदि का वर्णन हो।

ये सूत्रकृतांग नामक दूसरे अङ्ग के २३ भेद हैं। इनको अकाल में पढ़ने से दोष लगता है। ऐसा दोष लगने पर प्रतिक्रमण करना चाहिए।

पणवीसाए किरियासु—पच्चीस प्रकार की क्रियाओं में।

(१) **सम्यक्त्व क्रिया**—देव-शास्त्र-गुरु की पूजन आदि सम्यग्दर्शन को बढ़ाने वाली क्रियाएँ।

(२) **मिथ्यात्व क्रिया**--कुदेव आदि की पूजन, मिथ्यात्व को बढ़ाने वाली क्रियाएँ।

(३) **प्रयोग क्रिया**—शरीरादि के द्वारा गमनागमन में प्रवृत्त होना।

(४) **समादान क्रिया**—संयमी जीवों का असंयम के सम्मुख होना अथवा प्रयत्नपूर्वक उपकरणादि का ग्रहण करना।

(५) **ईर्यापथ क्रिया**—ईर्यापथ कर्म की कारणभूत क्रियाएँ।

(६) **प्रादोषिकी क्रिया**—क्रोध के आवेश से द्वेषादिकरूप बुद्धि करना।

(७) **कायिकी क्रिया**—दुष्टता पूर्वक काय से उद्यम करना।

(८) **अधिकरण क्रिया**—हिंसा के उपकरण तलवार आदि ग्रहण करना।

(९) **पारितापिकी क्रिया**—जीवो को दुःख उत्पन्न कराने वाली क्रियाएँ।

(१०) **प्राणातिपातकी क्रिया**—इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास प्राणों का वियोग करना।

(११) **दर्शन क्रिया**—राग के कारण रमणीयरूप को देखने की इच्छा करना।

(१२) **स्पर्शन क्रिया**—काम के वशीभूत होकर सुन्दर स्त्रियों के स्पर्श की इच्छा करना।

(१३) **प्रात्ययिकी क्रिया**—हिंसा आदि के नये-नये उपकरण एकत्र करना।

(१४) **समन्तानुपात क्रिया**—मनुष्यों एवं पशुओं के बैठने आदि के स्थान पर मल-मूत्र आदि करना।

(१५) **अनाभोग क्रिया**—बिना शोधी, देखी भूमि पर उठना-बैठना आदि।

(१६) **स्वहस्त क्रिया**—नौकर आदि के करने योग्य कार्य स्वयं करना।

(१७) **निसर्ग क्रिया**—पापोत्पादक प्रवृत्ति में दूसरों को अनुमति देना।

(१८) **विदारण क्रिया**—दूसरों द्वारा किये गये गुप्त पापों का प्रकट करना।

(१९) **आज्ञा-व्यापादन क्रिया**—चारित्रमोह के उदय से जिनेन्द्रोक्त आवश्यकादि - पालन में स्वयं असमर्थ होने के कारण दूसरों को भी जिनाज्ञा के विपरीत कथन कर अपने प्रमाद की पुष्टि करना।

(२०) **अनाकांक्षा क्रिया**—प्रमाद अथवा अज्ञान के कारण शास्त्रोक्त क्रियाओं का आदर नहीं करना।

(२१) **प्रारम्भ क्रिया**—प्राणियों की छेदन-भेदन आदि क्रियाओं में स्वयं प्रवृत्त होना और दूसरों को प्रवृत्त देखकर हर्षित होना।

(२२) **पारिग्रहिकी क्रिया**—परिग्रह के संरक्षण का प्रयत्न करना।

(२३) **माया क्रिया**—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप में तथा इनके धारण करने वाले पुरुषों में कपटरूप प्रवृत्ति करना।

(२४) **मिथ्यादर्शन क्रिया**—मिथ्यामतोक्त क्रियाओ के पालन करने वालों की प्रशसा करना।

(२५) **अप्रत्याख्यान क्रिया**—चारित्र मोह के उदय से त्याग रूप प्रवृत्ति नही होना।

पणवीसाए भावणासु—पच्चीस भावनाओं में।

जिस प्रकार उच्च औषधियाँ रसादि की भावना देने से विशिष्ट गुणवाली हो जाती है, उसी प्रकार अहिंसादि महाव्रत भी भावनाओ मे भावित होकर सत्फलदायक हो जाते है। अहिंसादि महाव्रतो की स्थिरता के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाएँ है। यथा—

(१) **अहिंसा महाव्रत की ५ भावनाएँ**—वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदान-निक्षेपण समिति, आलोकित भोजन-पान।

(२) **सत्य महाव्रत की ५ भावनाएँ**—क्रोधत्याग, लोभत्याग, भयत्याग, हास्यत्याग और अनुवीचिभाषण बोलना।

(३) **अचौर्य महाव्रत की ५ भावनाएँ**—शून्यागारवास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि, सधर्माविसवाद।

(४) **ब्रह्मचर्य महाव्रत की ५ भावनाएँ**—स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग, तन्मनोहर अंग निरीक्षण त्याग, पूर्वरतानुस्मरण त्याग, वृष्येष्टरस त्याग, स्वशरीर सस्कार त्याग।

(५) **परिग्रहत्याग महाव्रत की ५ भावनाएँ**—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण, इन पाँचों इन्द्रियों को इष्ट लगने वाले विषयो से राग और अनिष्ट लगने वाले विषयो से

द्वेष नहीं करना—परि-
ग्रहत्याग महाव्रत की
पाँच भावनाएँ हैं।

छव्वीसाए पुढवीसु—छब्बीस पृथिवियों में। उनके नाम हैं—

(१) सौधर्मादि मोक्षशिला पर्यन्त **रुचिरा** नामक पृथ्वी।

(२) भरत और ऐरावत मे अवसर्पिणी काल मे **शुद्धा** नामक पृथ्वी। उत्सर्पिणी काल मे वह पृथ्वी **खरा** कहलाती है।

(३ से १८ तक) रत्नप्रभा पृथ्वी के खर भाग में एक-एक हजार योजन मोटी १६ पृथ्वियां है। (१) चित्रा, (२) वज्रा, (३) वैडूर्य, (४) लोहितांक, (५) मसारगल्ल, (६) गोमेद, (७) प्रवाल, (८) ज्योतिष, (६) रसांजन, (१०) अंजनमूल, (११) अङ्क, (१२) स्फटिक, (१३) चन्दन, (१४) वर्चक, (१५) वकुल, (१६) शिलामय।

(१६) **पकभाग रूप**—८४,००० योजन प्रमाण मोटी एक पृथ्वी।

(२०) **अब्बहुल भाग में**—८०,००० योजन मोटी एक पृथ्वी।

(२१) **शर्कराप्रभा**—नरक की पृथ्वी।

(२२) **बालुकाप्रभा**—नरक की पृथ्वी।

(२३) **पंकप्रभा**—नरक की पृथ्वी।

(२४) **धूमप्रभा**—नरक की पृथ्वी।

(२५) **तमप्रभा**—नरक की पृथ्वी।

(२६) **महातमप्रभा**—नरक की पृथ्वी।

सत्तावीसाए अणगारगुणेसु २७ प्रकार के अनगार गुण—**१२** भिक्षु प्रतिमा, **८** प्रवचन मातृका, (१) क्रोध (२) मान (३) माया (४) लोभ (५) राग (६) द्वेष और (७) मोह का अभाव, ये २७ अनगार अर्थात् मुनियों के गुण हैं

अट्ठावीसाए आयारकप्पेसु—**२८** प्रकार के **आचारकल्प** या मुनियों के **२८ मूलगुणों में**।

पाँच महाव्रत, **पाँच** समिति, **पंचेन्द्रिय निरोध, षड्आवश्यक** और

(१) सिर और दाढ़ी के केशों को हाथ से उखाड़ना।
(२) वस्त्र मात्र का परित्याग।
(३) स्नान का त्याग।
(४) काष्ठ-फलक-शिला या तृण पर शयन।
(५) दँतौन करने का त्याग।
(६) पृथ्वी पर खड़े होकर भोजन करना।
(७) दिन में एक ही बार भोजन करना; ये सब मिलकर २८ मूलगुण साधुओं के होते है।

एउणतीसाए पावसुत्तपसंगेसु—२९ प्रकार के पापसूत्र।

(१) **चित्रकर्मादि सूत्र**- चित्रकार आदि के शास्त्र।
(२) **गणित सूत्र**
(३) **चाटुकार सूत्र**
(४) **वैद्यक सूत्र**
(५) **नृत्य सूत्र**
(६) **गान्धर्व सूत्र**
(७) **पटह सूत्र**
(८) **अगद सूत्र**
(९) **मद्य सूत्र**
(१०) **द्यूत सूत्र**
(११) **राजनीति सूत्र**
(१२) **चतुरंग सूत्र**
(१३ से २१) **हाथी, घोड़ा, पुरुष, स्त्री, छत्र, गाय, तलवार, दण्ड, अंजन** इनके लक्षण बतलाने वाले सूत्र।
(२२) **व्यंजन सूत्र**– किसी के शरीर पर तिल, मसा, लसन आदि देखकर शुभाशुभ कहना व्यंजन सूत्र है।
(२३) **स्वर सूत्र**—किसी पशु-पक्षी की आवाज सुनकर शुभाशुभ कहना स्वर सूत्र है।
(२४) **अङ्ग सूत्र**—किसी स्त्री अथवा पुरुष के नाक, कान, आँख, अंगुली आदि को देखकर शुभाशुभ कहना अङ्ग सूत्र है।

(२५) **लक्षण सूत्र**- शरीर मे होने वाले ध्वजा आदि चिह्नों को देखकर शुभाशुभ कहना लक्षण सूत्र है।

(२६) **छिन्न सूत्र**—वस्त्र को कटा हुआ, चूहे द्वारा खाया हुआ, जला हुआ, स्याही आदि से भरा हुआ देखकर शुभाशुभ कहना छिन्न सूत्र है।

(२७) **भौम सूत्र**--पृथ्वी को देखकर--"यहाँ धन है, यहाँ खारा पानी है, यहाँ मीठा पानी है"—आदि कहना भूमि सूत्र है।

(२८) **स्वप्न सूत्र**—स्वप्न का शुभाशुभ फल कहना स्वप्न सूत्र है।

(२९) **अन्तरिक्ष सूत्र** सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि के उदय, अस्त या आकृति आदि को देखकर शुभाशुभ कहना अन्तरिक्ष सूत्र है। ये २९ पापसूत्र है।

तीसाए मोहणीयठाणेसु—३० प्रकार के मोहनीय स्थानों में।

(१-५) **पाँच व्रतों के विषय में ५ प्रकार का मोह**—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह—इन ५ व्रतों का मोह।

(६-१०) **५ प्रकार के मनुष्यों का मोह**—

(क) भोगभूमिज मनुष्य का मोह।

(ख) विद्याधर, त्रेसठशलाका पुरुषों का मोह।

(ग) पचदश कर्मभूमिज चतुर्थ कालोत्पन्न मनुष्यों का मोह।

(घ) भरत और ऐरावत क्षेत्र के दुषमा एवं अतिदुषमा कालोत्पन्न मनुष्यों का मोह।

(ङ) समुद्र के मध्य द्वीपों में उत्पन्न होने वाले कुभोगभूमियाँ मनुष्यों का मोह।

(११-१९) **नौ पदार्थों का मोह** जीव, अजीव, आस्रव, बध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप—इन ९ पदार्थों का मोह।

(२०-२६) **सात नयों का मोह**—नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत—इन सात नयों का मोह।

(२७) **तप**—बारह प्रकार के तपों के स्वरूप का मोह।
(२८) **दर्शन**—दर्शन स्वरूप का मोह।
(२९) **व्रत-विनाश**—व्रत-विनाश-विषयक मोह।
(३०) **कर्मबन्धस्वरूप का मोह**—ये ३० प्रकार के मोहनीय स्थान है।

अथवा

दस प्रकार का बहिरंग परिग्रह। **चौदह** प्रकार का अन्तरग परिग्रह। दुष्ट **पाँच** इन्द्रियाँ तथा **एक** मन--इन सबका मोह ३० प्रकार के मोहनीय स्थान है। इनमें मोह नही करना चाहिए। इनमें मोह उत्पन्न हो जाय तो प्रतिक्रमण करना चाहिए।

एक्कतीसाए कम्मविवाएसु—३१ प्रकार के कर्म-विपाक (फल) में।

ज्ञानावरणीय-**५**, दर्शनावरणीय-**९**, वेदनीय-२, मोहनीय-२, (दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय), आयु-**४**, शुभ और अशुभ के भेद से नामकर्म-२, ऊँच और नीच के भेद से गोत्र कर्म-**२** और अन्तराय-**५** ये ३१ कर्मविपाक है।

बत्तीसाए जिणोवएसेसु—३२ प्रकार के, भगवान जिनेन्द्र देव के वचन या उपदेश मे।

षट् आवश्यक **बारह** अग और **चौदह** पूर्व -ये जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित **३२** नियम या उपदेश है।

तेत्तीसाए अच्चासादणाए—३३ प्रकार की अत्यासादना में।

५ अग्निकाय, **६** जीवनिकाय, **५** महाव्रत, ८ प्रवचनमातृका और **९** पदार्थ; यह **३३** प्रकार की अत्यासादना है अर्थात् इनमें अनादर की भावना होना।

अथवा

(१) अरिहंत (२) सिद्ध (३) बुद्ध (४) जिन (५) केवली (६) केवलीप्रणीत धर्म (७) ज्ञान (८) दर्शन (९) चारित्र

(१०) तप (११) नियम (१२) संयम (१३) आचार्य (१४) उपाध्याय (१५) साधु (१६) गण (१७) गणी (१८) तपस्वी (१९) प्रवर्तक (२०) स्थविर (२१) कुलकर (२२) सधार्मिक (२३) परधार्मिक (२४) श्रमण (२५) श्रमणी (२६) श्रावक (२७) श्राविका (२८) देव (२९) देवी (३०) मानुष (३१) मानुषी (३२) तिर्यंच (३३) तिर्यचिनी—

इन ऊपर कहे हुए ३३ स्थानों में अनादर की भावना होना सो ३३ अत्यासादना है।

चउतीसातिसय—चौंतीस अतिशय ।

जन्म के दस अतिशय—

(१) शरीर का अत्यन्त सुन्दर होना।

(२) शरीर का अत्यन्त सुगन्धमय होना।

(३) शरीर मे पसीना नही आना।

(४) शरीर का मल-मूत्र रहित होना।

(५) प्रिय हित-मित वचन बोलना।

(६) अतुल पराक्रम का होना।

(७) शरीर मे दूध के समान श्वेत रक्त का होना।

(८) शरीर मे १००८ लक्षणों का होना।

(९) समचतुरस्र संस्थान होना।

(१०) वज्रवृषभनाराच सहनन का होना।

ये जन्म के १० अतिशय है।

केवलज्ञान के दस अतिशय—

(१) जहाँ केवली भगवान बिराजमान हो उसके चारों ओर सौ-सौ योजन अथवा ४०० कोस तक सुभिक्ष का होना।

(२) भगवान का आकाश मे गमन करना।

(३) एक मुख होने पर चारों ओर चार मुख का दृष्टिगोचर होना।

(४) केवली भगवान के समीप किसी भी जीव की हिंसा का नही होना।

(५) उन पर किसी भी प्रकार के उपसर्ग का नहीं होना ।

(६) केवली भगवान के कवलाहार का नहीं होना ।

(७) समस्त विद्याओं का स्वामी होना ।

(८) नाखून और केशों का नहीं बढ़ना ।

(९) आँखों की पलकों का नहीं झपकना ।

(१०) शरीर की छाया का नहीं पड़ना ।

ये दस केवलज्ञान के अतिशय है ।

देवकृत चौदह अतिशय—

(१) समस्त जीवों का कल्याण करने वाली भगवान की दिव्यध्वनि का सर्वबोधगम्य अर्द्धमागधी भाषा में प्रकट होना ।

(२) भगवान के समवसरण में आये हुए समस्त प्राणियों का जन्मजात वैर - विरोध छोड़कर मैत्रीभाव मे रहना ।

(३) दशो दिशाओं का धूमरहित व निर्मल होना ।

(४) शरद् ऋतु के सरोवर के निर्मल जल के समान आकाश का अत्यन्त निर्मल होना ।

(५) विविध ऋतुओं के होने वाले फल-फूलो का एक साथ वृक्षों पर प्रकट होना ।

(६) भूमि का मनोज्ञ दर्पण के समान अत्यन्त निर्मल हो जाना ।

(७) भगवान के विहार के समय उनके चरण-कमलो के नीचे देवों द्वारा २२५ स्वर्णमय कमलों की रचना करना ।

(८) आकाश में इन्द्र की आज्ञा से भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवो द्वारा भगवान की जय-जयकार करना ।

(९) भगवान जहाँ विराजमान हो वहाँ मन्द-मन्द सुगन्धित वायु का बहना ।

(१०) इन्द्र की आज्ञा से सनत्कुमार देवों द्वारा सुगन्धित गन्धोदक की वृष्टि करना ।

(११) भगवान जहाँ विराजमान हों वहाँ एक योजन तक भूमि का तृण, कांटों आदि से रहित हो जाना ।

(१२) समस्त सृष्टि का आनन्दमय हो जाना ।

(१३) भगवान के विहार करते समय अपनी प्रभा से सूर्य का निरस्कार करने वाले एक हजार आराओं से सुशोभित दैदीप्यमान धर्मचक्र का भगवान के आगे-आगे चलना।

(१४) छत्र, चमर, झारी, कलश, पंखा दर्पण, स्वस्तिक और ध्वजा--इन अष्ट मगल द्रव्यों को अपने मस्तक पर लेकर देवांगनाओं का भगवान् के आगे-आगे चलना।

ये देवकृत १४ अतिशय है।

अष्टादश-शील-सहस्राणि=शील के अठारह हजार भेद।

अशुभ मन, वचन, काय का निराकरण × शुभ मन, वचन, काय = ६

६ × ४ (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह) = ३६

३६ × ५ (पचेन्द्रिय विजय) = १८०

१८० × १० (पाँच स्थावर, विकलत्रय और संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय) = १८००

१८०० × १० (उत्तम क्षमादि दसधर्म) = १८,००० शील के भेद।

चतुरशीति-लक्षगुणाः--चौरासी लाख उत्तर गुण।

हिंसादि के २१ भेद--(प्राणिवध, मृषावाद, अदत्तादान, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, मनोदुष्टत्व, वचन-दुष्टत्व, कायदुष्टत्व, मिथ्यात्व, प्रमाद, पैशून्य, अज्ञान, इन्द्रिय अनिग्रहत्व)

२१ × ४ (अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार) = ८४

८४ × १० (चार स्थावर, प्रत्येक वनस्पति, साधारण वनस्पति, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय) = ८४०

८४० × १० (उत्तम क्षमादि दस धर्म) = ८,४००

८४०० × १० (शील विराधना-स्त्रीसंसर्ग, प्रणीत रस सेवन, सुगन्ध-संस्कार, कोमल शयनासन, शरीर मण्डन, राग-मिश्रित गीत-वादित्र श्रवण, अर्थग्रहण, कुशील संसर्ग, राजसेवा, रात्रि सचरण) = ८४,०००

८४,००० × १० (आलोचना के दोष—आकम्पित, अनुमानित, दृष्ट दोष, बादर दोष, सूक्ष्म दोष, छिन्न दोष, शब्दाकुलित, बहुजन, अव्यक्त और तत्सेवी दोष) = ८,४०,०००

८,४०,००० × १० (आलोचना, प्रतिक्रमण, उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार, उपस्थापना और श्रद्धान) = ८४,००,०००।

ये ८४,००,००० उत्तर गुण है।

बत्तीस अन्तराय—बत्तीस प्रकार के अन्तराय।

(१) रक्त (२) पूय (मवाद) (३) अस्थि (४) मांस
(५) गीला चमड़ा (६) मल (टट्टी) आदि का देखना।
(७) शरीर पर कौवे आदि की विष्टा गिर जाने पर।
(८) उल्टी हो जाने पर।
(९) किसी के द्वारा रुकावट डाल देने पर।
(१०) दु:ख के कारण अश्रुपात हो जाने पर।
(११) कौए आदि के द्वारा ग्रासादि छीनकर ले जाने पर।
(१२) त्यागी हुई वस्तु आहार में आ जाने पर।
(१३) पैरों के बीच से पचेन्द्रिय जीव के निकल जाने पर।
(१४) मृतक पचेन्द्रिय का कलेवर दृष्टिगोचर होने पर।
(१५) अपने उदर से कृमि (१६) मूत्र (१७) विष्टा
(१८) रक्त, मवाद आदि के निकलने पर।
(१९) थूकने पर अन्तराय होती है।
(२०) आहार के लिए जाते समय कुत्तादि काट जाय या
(२१) रास्ते मे बैठ जाय।
(२२) हाथ में या मुख में द्वित्रीन्द्रियादि जीव या
(२३) हड्डी (२४) नख (२५) केशादि आ जाय।
(२६) किसी का यष्टि आदि के द्वारा प्रहार करना।
(२७) ग्रामदाह
(२८) अशुभ, उग्र व तीव्र कठोर वचनो को सुनना।

(२९) उपसर्ग आ जाना।

(३०) पात्र का हाथ से छूटकर गिर जाना।

(३१) अयोग्य घर में प्रवेश करना।

(३२) जानु के नीचे के भाग का स्पर्श आदि हो जाने पर अन्तराय आ जाती है।

छियालीस दोष—प्रमाद से लगे हुए एषणा समिति सम्बन्धी छियालीस दोष। १६ उद्गम दोष, १६ उत्पादन दोष, १० एषणा दोष तथा ४ अंगार दोष ४६

१६ उद्गम दोष

(१) **उद्गम दोष**—जो अन्न स्व, संयत, पाखंडी आदि किसी का भी उद्देश्य लेकर बनाया जाय तो उद्दिष्ट दोष लगता है।

(२) **अध्यवधि दोष**—रसोई हो जाने के बाद संयत को आया हुआ देखकर अथवा सयत के आ जाने के बाद और अधिक चावल आदि डालना अध्यवधि दोष है।

(३) **पूति दोष**—जिस प्रासुक कासी आदि के पात्र मे मिथ्यादृष्टि साधुओं को आहार दिया गया है उसी पात्र मे रखा हुआ अन्न दिगम्बर साधु को आहार मे दिया जाय तो पूति दोष लगता है।

(४) **मिश्र दोष**—प्रासुक और अप्रासुक को मिलाकर आहार देना मिश्र दोष है।

(५) **स्थापित दोष**—पाक-भाजन से अन्न को निकालकर स्वगृह मे अथवा अन्य किसी के घर मे स्थापित कर के देना वा एक भाजन से निकालकर दूसरे भाजन में स्थापित करना, उस भाजन से फिर तीसरे में रखना स्थापित दोष है।

(६) **बलि दोष**– यक्षादि की पूजा के निमित्त बनाया हुआ आहार सयत को देना बलि दोष है।

(७) **प्राभृत दोष**—इस महीने, इस ऋतु अथवा इस तिथि को मुनियों को आहार दूंगा, इस प्रकार के नियम से आहार देना प्राभृत दोष है।

(८) **प्राविष्कृत दोष**—हे भगवन्! यह मेरा घर है। इस प्रकार गृहस्थ के द्वारा घर बतलाकर आहार दिया जाना अथवा भाजनादि का सम्कार करना, भाजन को स्थानान्तर में ले जाना प्राविष्कृत दोष है।

(९) **प्रामृष्य दोष**- यतियों के दान के लिए ब्याज देकर वस्तु लाना अथवा थोडा कर्ज लेना प्रामृष्य दोष है।

(१०) **क्रीत दोष**—विद्या से खरीद कर अथवा द्रव्य, वस्त्र, भाजन आदि के विनिमय से अन्नादि खरीद कर लाना और साधु को आहार में देना क्रीत दोष है।

(११) **परावर्त्त दोष**- अपने घर के चावल, घृत आदि को देकर बदले में दूसरे चावल आदि लाकर आहार देना परावर्त्त दोष है।

(१२) **अभिहित दोष**— एक ग्राम से दूसरे ग्राम में अथवा एक मोहल्ले से दूसरे मोहल्ले में ले जाकर साधु को आहार देना अभिहित दोष है। सरल पंक्ति-बद्ध सात घरों से लाया हुआ आहार साधुओं को देने योग्य है, सात घरों के परे स्थित घरों से लाया हुआ आहार साधुओं को देने योग्य नहीं है। इस विधि का उल्लघन करके आहार देना अभिहित दोष है।

(१३) **उद्घाटित दोष** -आहार के लिए साधु के आ जाने के अनन्तर मुद्रा आदि का भेद कर या किसी

पत्थर आदि से आच्छादित वस्तु को खोल कर देना उद्घाटित दोष है।

(१४) **मालिकारोहण दोष**—ऊपर भाग मे रखो हुई खान-पान आदि की वस्तु को सीढी लगाकर उतारना और साधुओं को देना मालिकारोहण दोष है।

(१५) **आच्छेद्य दोष**—राजादि के भय से जो आहार दिया जाता है, वह आच्छेद्य दोष है।

(१६) **अनिसृष्ट दोष**—ईश और अनीश के अनभिमत से अथवा स्वामी और अस्वामी के अनभिमत से आहार देना अनिसृष्ट दोष है।

ये १६ उद्गम दोष श्रावको के आश्रित है।

१६ उत्पादन दोष

(१) **धातृ दोष**—बालको के लालन-पालन की शिक्षा देकर आहार ग्रहण करना धातृ दोष है।

(२) **दूतत्व दोष**—दूरस्थ बन्धुओं के समाचार लाना-ले जाना दूतत्व दोष है।

(३) **भिषग्वृत्ति दोष**—आहार के लिए गजचिकित्सा, बालचिकित्सा, विषचिकित्सा आदि बतलाना भिषग्वृत्ति दोष है।

(४) **निमित्त दोष**—स्वर, अन्तरिक्ष, भौम, अङ्ग, व्यजन, छिन्न, लक्षण और स्वप्न—इन आठ निमित्त कारणों को बताकर भिक्षा उपार्जन करना निमित्त दोष है।

(५) **इच्छाविभाषण दोष**—किसी श्रावक के यह पूछने पर कि हे मुनिवर! दीन-हीन प्राणियों को दान देने मे पुण्य होता है या नहीं? उस श्रावक की इच्छानुसार उत्तर देना इच्छाविभाषण दोष है।

(६) **पूर्वस्तवन दोष**—हे जिनदत्त ! तू जगत् में विख्यात दाता है—तेरे पिता भी महान् दानी थे—इस प्रकार प्रशसा-वचनों द्वारा गृहस्थ को आनन्दित करके आहार करना पूर्वस्तवन दोष है।

(७) **पश्चात्स्तवन दोष**—आहार करने के बाद—हे जिनदत्त ! तू बड़ा दानी है, तेरे घर के आहार जैसा आहार किसी के यहां नही बनता—इस प्रकार की प्रशंसा करना पश्चात्स्तवन दोष है।

(८) **क्रोध दोष**—क्रुद्ध होकर आहार लेना क्रोध दोष है।

(९) **मान दोष**—मान-कषाय सहित आहार लेना मान दोष है।

(१०) **माया दोष**—मायाचार से आहार लेना माया दोष है।

(११) **लोभ दोष**—लोभ-कषाय सहित आहार लेना लोभ दोष है।

(१२) **वश्य कर्म**—वशीकरण मन्त्र के द्वारा आहार प्राप्त करना वश्यकर्म दोष है।

(१३) **स्वगुणस्तवन दोष**—अपने कुल, जाति, तप आदि का गुणगान करना स्वगुणस्तवन दोष है।

(१४) **मन्त्रोपजीवन दोष**—अङ्ग-शृंगारकारी पुरुषो को पठित सिद्ध आदि मन्त्रो का उपदेश देना मन्त्रोपजीवन दोष है।

(१५) **चूर्णोपजीवन दोष**—चूर्णादि का उपदेश देकर अन्नोपार्जन करना चूर्णोपजीवन दोष है।

(१६) **विद्योपजीवन दोष**—आहार के लिए गृहस्थो को सिद्ध-विद्या साधित-विद्या प्रदान करना विद्योपजीवन दोष है।

ये १६ उत्पादन दोष पात्र के आश्रित है।

१०-एषणा दोष—

(१) **शंकित दोष**—यह वस्तु सेव्य है अथवा असेव्य—ऐसी शका

करते हुए उस वस्तु को आहार में लेना शंकित दोष है।

(२) **म्रक्षित दोष**—घृत आदि से चिकने पात्र से या हाथ से आहार लेना म्रक्षित दोष है।

(३) **निक्षिप्त दोष**—सचित्त कमल-पत्र आदि पर रखा हुआ आहार लेना निक्षिप्त दोष है।

(४) **पिहित दोष**—सचित्त कमलपत्रादि से ढके हुए अन्न को ग्रहण करना पिहित दोष है।

(५) **उज्झित दोष**—आम, केला आदि फल का अधिक भाग नीचे गिराकर स्वल्प ग्रहण करना अथवा दाता के द्वारा दिये हुए आहार के बहुभाग को नीचे गिराकर थोड़ा सा ग्रहण करना उज्झित दोष है।

(६) **व्यपहार दोष**—आहार देने के पात्रादि को अच्छी तरह से देखे बिना आहार देना व्यपहार दोष है।

(७) **दातृ दोष**—बिना वस्त्र पहने अथवा एक कपड़ा पहनकर आहार देना, नपुंसक, जिसके भूत लगा है, जो अन्धा है, पतित या जाति-बहिष्कृत है, मृतक का दाह-संस्कार करके आया है, तीव्र रोग से आक्रान्त है, जिसके फोड़ा-फुन्सी है, जो कुलिंगी है, नीचे स्थान से खड़ा है या साधु से ऊँचे आसन पर खड़ा है, जो स्त्री पाँच महीनों से अधिक गर्भवाली है, वेश्या है, दासी है, लम्बा घूंघट निकाले हुए है, अपवित्र है, मुख में कुछ खा रही है—इस प्रकार के दाता का आहार देना दातृ दोष है।

(८) **मिश्र दोष**—सचित्तादि से अथवा षट्काय के जीवों से मिश्रित आहार लेना मिश्र दोष है।

(९) **अपक्व दोष**—जिस पानी आदि के रूप, रस, गन्धादि का अग्नि आदि के द्वारा परिवर्तन नहीं हुआ हो उसे आहार में देना अपक्व दोष है।

(१०) **लिप्त दोष**—आटे आदि से लिप्त चम्मच आदि से अथवा सचित्त जल आदि से लिप्त पात्र या हस्तादि से दिये हुए आहार को लेना लिप्त दोष है।

४ अंगार दोष

(१) **संयोजन दोष**––स्वाद के लिए शीत वस्तु में उष्ण वस्तु अथवा उष्ण वस्तु में शीत वस्तु मिलाकर आहार करना संयोजन दोष है। इस प्रकार के आहार से अनेक रोग भी उत्पन्न हो जाते हैं एवं असयम की वृद्धि भी होती है।

(२) **प्रमाणातिरेक दोष**––मुनियों के लिए आहार-विधि इस प्रकार बतायी गयी है—कुक्षि के अर्धभाग को अन्न से भरे, एक भाग पेय पदार्थ से पूरित करे तथा एक भाग वायु के संचार के लिए खाली रखे। आहार के प्रति अत्यधिक लालसा होने के कारण जब इस विधि का उल्लंघन किया जाता है तो प्रमाणातिरेक दोष लगता है। प्रमाणातिरेक आहार से ध्यान भग होता है, अध्ययन का विनाश तथा निद्रा एवं आलस्य की उत्पत्ति होती है।

(३) **अंगार दोष**—इष्ट अन्न-पानादि की प्राप्ति हो जाने पर राग के वशीभूत होकर अधिक सेवन करना अगार दोष है।

(४) **धूम दोष**—अनिष्ट अन्न-पानादि की प्राप्ति होने पर द्वेष करना धूम दोष है।

卐 प्रतिक्रमणदण्डक 卐

णमो जिणाणं - सर्व जिनेन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो ओहि-जिणाण --देशावधि मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो परमोहि-जिणाणं --परमावधि मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो सव्वोहि-जिणाणं--सर्वावधि मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो अणंतोहि-जिणाणं—अनन्तावधि केवलज्ञानियों को नमस्कार हो।

णमो कोट्ठ-बुद्धीणं—जैसे कोठे के स्वामी द्वारा सुरक्षित और अलग-अलग रखे हुए धान्यों का अवस्थान रहता है, उसी प्रकार तप के माहात्म्य से जिनकी बुद्धि में अवधारित ग्रन्थ और अर्थों का अलग-अलग अविनष्ट अवस्थान रहता है उन कोष्ठ-बुद्धि धारक मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो बीजबुद्धीणं -जैसे उपजाऊ क्षेत्र में बोया गया एक भी बीज, कालादिक की सहायता पाकर अनेक बीजप्रद होता है उसी प्रकार तप के प्रभाव से एक पद के ग्रहण से अनेक पदार्थों के ग्रहण की सामर्थ्य वाले बीज-बुद्धि धारक मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो पदाणुसारीणं--तप के माहात्म्य से आदि, अन्त या जहाँ-तहाँ के एक पद को ग्रहण कर समस्त ग्रन्थार्थ का अवधारण करने वाले पदानुसारी बुद्धि - धारक मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो संभिण्णसोदारणं--तप के प्रभाव से बारह योजन लम्बे और नौ योजन चौड़े चक्रवर्ती के स्कन्धावार के मनुष्य, घोड़े, हाथी, ऊंट, और गाय आदि से उत्पन्न

अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक परस्पर विभिन्न शब्दों का युगपत् प्रतिभास करने वाले संभिन्न-श्रोतृ ऋद्धिधारक मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो सयं-बुद्धाणं—परोपदेश के बिना वैराग्य का किञ्चित् सा कारण देखकर स्वयं ही वैराग्य को प्राप्त स्वयबुद्ध मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो पत्तेय-बुद्धाणं—परोपदेश के बिना किसी भी एक निमित्त से वैराग्य को प्राप्त प्रत्येकबुद्ध मुनीन्द्रों को नमस्कार हो। (जैसे नीलांजना के निमित्त से ऋषभदेव को वैराग्य हुआ था।)

णमो बोहिय-बुद्धाणं—भोगों मे आसक्त होते हुए अपने शरीर आदि का अशाश्वतरूप देखकर वैराग्य को प्राप्त बोधितबुद्ध मुनीन्द्रों को नमस्कार हो। जैसे-सनत्कुमार चक्रवर्ती

णमो उजु-मदीणं—ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो विउल-मदीणं—विपुलमती ज्ञानी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो दस-पुव्वीणं—अभिन्न दश पूर्वधारक मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो चउदस-पुव्वीणं—उत्पादादि चतुर्दश पूर्वधर मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो अट्ठंग-महा-णिमित्त-कुसलाणं—अंग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष रूप आठ निमित्तों के महाज्ञाता अष्टांग महानिमित्त कुशल मुनीन्द्रों को नमस्कार हो। (इन आठ प्रकार के आधार पर भविष्यत्-काल मे होने वाले हानि-लाभ जानने की शक्ति)

णमो विउव्वणइड्ढिपत्ताणं—तप के माहात्म्य से शरीर की अणु सदृश छोटी और महत् (बड़ी) आदि रूप नाना प्रकार की विक्रिया करने में समर्थ विक्रिया ऋद्धि मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो विज्जाहराणं—अंग, पूर्व, वस्तु और प्राभृत आदि लक्षण वाली सर्व विद्याओं के आधारभूत विद्याधर मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो चारणाणं–जघा, जल, अग्नि, तन्तु, फल, बीज, पत्र, श्रेणी पर अप्रतिहत (जीवों को बाधा दिये बिना) रूप से गमन करने मे कुशल चारण ऋद्धिधारी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

(जघा-भूमि से चार अगुल ऊपर आकाश मे गमन, जल के ऊपर, अग्निशिखा के ऊपर, तन्तुओ के ऊपर, फल के ऊपर, बीज के ऊपर, पत्र के ऊपर, इन सब को बिना स्पर्श किये गमन, आकाश - प्रदेश पक्ति के अनुसार अधर गमन)।

णमो पण्ण-समणाणं—परम प्रतिभाशाली प्रज्ञा को प्राप्त प्रज्ञा श्रवण मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो आगास-गामीणं—पैरो को उठाये या रखे बिना ही आकाश मे गमन करना, पैर रखते हुए गमन करना, पद्मासन या खड्गासन मे अवस्थित दशा मे ही आकाश मे गमन करने वाले आकाश-गामित्व ऋद्धिधारी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो आसीविसाण—जिनका आशिष विष है अथवा अमृत है (क्रोधावेश मे किसी प्राणी से 'मर जाओ' ऐसा कहने पर उस का तत्काल मरण हो जाय अथवा 'जीव' कहने पर जीवित हो जाय) उन आशीविष मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो दिट्ठिविसाणं—तप के माहात्म्य से जिनकी दृष्टि ही विषरूप अथवा अमृतरूप होती है उन दृष्टिविषधारी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

(देखने मात्र से भस्मीभूत एवं ऋद्धि आदि मे वृद्धि)

णमो उग्गतवाणं—जो एक उपवास करके पारणा के पश्चात् दो दिन उपवास करते है, पुन: पारणा करके तीन दिन का

उपवास करते है—इस प्रकार जीवन पर्यन्त एक-एक दिन का उपवास बढ़ाते जाने वाले उग्रतप ऋद्धिधारी मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो दित्त-तवाणं— मासोपवास कर लेने पर भी जिनका शारीरिक, मानसिक और वाचनिक बल प्रवर्धमान रहता है, मुख मे दुर्गन्धादि नही आती, उन दीप्ततप ऋद्धिधारक मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो तत्त-तवाणं—जिनके तप्तायमान लोहे पर पतित जलकणिका सदृश ग्रहण किये हुए चतुर्विध आहार का शोषण हो जाने से निहार नही होता, उन तप्ततप ऋद्धिधारी मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो महा-तवाणं—जो पक्ष-मासादि उपवास के अनुष्ठान मे तत्पर है अथवा अणिमादि आठ गुणो से युक्त हैं अथवा जल-चारणादि आठ प्रकार के चारण-गुणो मे युक्त है अथवा स्फुरायमान शरीर प्रभा वाले है अथवा सर्व विद्याओ से युक्त और ज्ञान से तीनो लोकों के व्यापार को जानने वाले है, ऐसे महातप ऋद्धिधारक मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो घोर-तवाणं—सिंह, शार्दूल आदि से युक्त पर्वतो की गुफाओं आदि मे या प्रचुरतर शीत, वात, आताप और दशमशक आदि से युक्त भयकर श्मशानों मे जाकर जो ध्यान करते है और दुर्द्धर उपसर्गों को सहन करते है, उन घोरतप ऋद्धिधारक मुनीन्द्रों को नमस्कार हो। अथवा वात, पित्तादि के प्रकोप से अनेक भयंकर रोगों के हो जाने पर भी अनशनादि तपो के अनुष्ठान मे दृढ रहना घोर-तप कहलाता है।

णमो घोर-गुणाणं—जिनके गुणो का चिन्तन करना भी जनसाधारण के लिए अशक्य है, ऐसे घोर गुणो के धारी मुनीश्वरों को नमस्कार हो।

णमो घोर-परक्कमाणं—जो घोर तपस्वी अपने तप को उत्तरोत्तर बढाते रहते है और उसके द्वारा ऐसे पराक्रम को प्राप्त कर लेते है जिसकी सहायता से यदि वे चाहे तो भू-मण्डल मे उथल-पुथल मचा दे, पर्वतों को चलायमान कर दे, सागर को सुखा दे और अग्नि, जल पाषाणादि की भयकर वर्षा कर दे, ऐसे घोर पराक्रम ऋद्धिधारक मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो घोरगुणबंभचारीणं—चिरकाल तक तपश्चरण करने से दुर्धर ब्रह्मचर्य गुण का निरतिचार पालन, दुःस्वप्नों का नही आना एव जिसके तपोबल के प्रभाव से भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि भाग जाये, बडी-बडी बीमारियां शांत हो जाये वैर, कलह, दुर्भिक्षादि मिट जावे, ऐसे महान् तपधारी घोर ब्रह्मचर्यगुण ऋद्धिधारक मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो आमोसहि-पत्ताणं—आम अर्थात् अपक्वाहार ही जिनके तप के प्रभाव से औषधिपने को प्राप्त हो जाता है अथवा जिनके हस्तपादादि के स्पर्श से रोगियों के रोग दूर हो जाते है, ऐसे आमौषधि ऋद्धिधारी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो खेलोसहिपत्ताणं— निष्ठीवन, थूक, कफ, लार आदि मल जिनके तप के प्रभाव से औषधिपने को प्राप्त हो जाते है, ऐसे खेलौषधि ऋद्धिधारी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो जल्लोसहिपत्ताणं— तप के प्रभाव से शरीर के पसीने के आश्रय से सचित मल अथवा सर्व मल औषधि को प्राप्त हो जाता है, ऐसे जल्लौषधि ऋद्धिधारी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो विप्पोसहिपत्ताणं— जिनका वीर्य ही अर्थात् विष्टा, मूत्र, शुक्र ही औषधि को प्राप्त हो जाता है, ऐसे विप्रौषधि ऋद्धिधारी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो सव्वोसहिपत्ताणं—तप के प्रभाव से जिनके शरीर की प्रत्येक धातु, नख, केश, मल-मूत्र आदि सभी औषधिपने को प्राप्त हो जाते है। अथवा शरीर के प्रत्येक अंग के स्पर्श से या उनसे स्पर्शित वायु सभी औषधि को प्राप्त होते है ऐसे सर्वौषधि ऋद्धिधारी मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो मण-बलीणं—बिना खेद को प्राप्त हुए जो एक-एक अन्तर्मुहूर्त में सम्पूर्ण द्वादशांग श्रुत के अर्थचिन्तन का सामर्थ्य पाने वाले मनोबली मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो वय-बलीणं—अनेक बार द्वादशाग का पाठ करके भी खेद को प्राप्त न होने वाले अथवा अन्तर्मुहूर्त मे सकल श्रुत के पाठ करने की शक्ति प्राप्त करने वाले वचनबली मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो काय-बलीणं—एक मास, चार-मास, छह-मास और एक वर्ष तक कायोत्सर्ग करके प्रतिमायोग को धारण करने पर भी क्लेश-रहित रहने वाले और छोटी अंगुली के द्वारा तीनों लोकों को उठाकर अन्यत्र रख देने के सामर्थ्य वाले कायबली मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो खीर-सवीणं—जिनके हाथ में रखा हुआ नीरस भोजन भी दूध के समान स्वादिष्ट हो जाय अथवा जिनके वचन श्रोताओ को दूध के समान संतोष व पोषण प्रदान करे, ऐसे क्षीर-स्रावी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो सप्पि-सवीणं—जिनके हाथ मे रखा हुआ रूखा-सूखा भोजन भी घी के समान स्वाद युक्त हो जाय, ऐसे घृतस्रावी मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो महुर-सवीणं—जिनके हाथ मे रखा हुआ नीरस भोजन भी मधु के समान मिष्ट हो जाय, ऐसे मधुरस्रावी मुनीन्द्रो को नमस्कार हो।

णमो अमिय-सवीणं—जिनके हाथ मे रखा हुआ नीरस भोजन भी अमृत जैसे स्वाद वाला हो जाय अथवा जिनके वचन

श्रोताओं को अमृत तुल्य प्रतीत हों, ऐसे अमृतस्रावी मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो अक्खीण-महाणसाणं—इस ऋद्धि के धारक साधु जिस रसोईघर में भोजन कर आवे उसके यहाँ चक्रवर्ती का समस्त परिवार भी भोजन करले तो भी भोजन की कमी नहीं होती।
अथवा, इस ऋद्धि के धारक साधु जिस मठ, वसनिका आदि स्थान पर बैठे हों वहाँ समस्त देव, मनुष्य, तिर्यंच आदि के निवास करने पर भी स्थान की कमी नहीं होती। ऐसे अक्षीण-महानस और अक्षीण-महालय ऋद्धि-धारक मुनीन्द्रों को नमस्कार हो।

णमो वड्ढमाणाणं—वर्धमान स्वामी को नमस्कार हो।

णमो सिद्धायदणाणं—सिद्धों के सर्व निर्वाणक्षेत्रों को नमस्कार हो।

णमो भयवदो-महदि-महावीर-वड्ढमाण-बुद्ध-रिसिणो—पूजा के अतिशय को प्राप्त भगवान महावीर, वर्द्धमान, बुद्ध और ऋषि को नमस्कार हो।
(ये सब नाम भगवान महावीर के है।)